परम सुख की ओर

संत आशारामजी महाराज

चाहे आकाश फट पडे, रात का दिन हो जाय, सूरज का गोला टूट जाय, सब कुछ मिट्टी में मिल जाय, फिर भी परम सुख को धक्का नहीं लगता।

❋

श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरा ० साबरमती ० अहमदाबाद

PARAM SUKH KI AUR

By Sant Shri Asharamji Maharaj

© श्री योग वेदान्त सेवा समिति

मूल्य : १-२५

प्रकाशक एवं प्राप्तिस्थान :
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आशाराम आश्रम
मोटेरागाँव (जि. गांधीनगर) गुजरात

मुद्रक : रतिलाल अंबालाल पटेल,
अक्षर प्रेस,
११, आशिष इन्ड. अेस्टेट,
नागरवेल हनुमान रोड,
रखियाल, अहमदाबाद-२३.

आवरण मुद्रण :
दर्शन प्रिन्टर्स, सलापस रोड,
अहमदाबाद-३८० ००१

महापारस

संत तो पारसमणि होते हैं, यह एक अल्पोक्ति होगी । क्योंकि पारसमणि केवल लोहे का सोना बनाता है, किंतु संतों के स्पर्श से तो अति जघन्य प्राणी भी संतसदृश हो जाते हैं ।

संत श्री आशारामजी महाराज ऐसे ही एक महापारस हैं । उनके जीवन की पावनगंगा गुजरात की धरा पर बह रही है । उनकी दिव्य ज्ञानधारा में अवगाहन कर के अनेक आत्माएं पावन हो रही है ।

साधना के एकांगी मार्ग पर चलनेवाले तथा केवल उसी का मार्गदर्शन देनेवाले कई लोग हमारे यहां हैं, लेकिन ज्ञान, कर्म व भक्ति की त्रिवेणी में जीवन भिगो देनेवाले तथा परम योग के दर्शन करानेवाले महात्मा विरले ही होते हैं ।

संत श्री आशारामजी ऐसे ही एक विरल महात्मा हैं। मानव मन की विराट व जटिल रहस्य सृष्टि में वे क्षणभर में प्रविष्ट हो सकते हैं तथा जीवन की जटिलताओं को इतनी सहजता से सुलझाते हैं कि उनसे लाभान्वित होनेवाले स्तब्ध रह जाते हैं।

साबरमती नदी के तट पर स्थित 'मोटेरा आश्रम' में ऐसे महान संत का दर्शन एवं सांनिध्य लाभ लेने हेतु कई जिज्ञासु आते हैं और परम तृप्त होकर लौटते हैं।

थके-हारे जीवात्माओं के लिये पूज्य श्री एक महान बल सिद्ध हुए हैं। उनके विविध अमृतोपदेश का संकलन प्रस्तुत करते हुए हमें बड़ा ही आनंद हो रहा है।

— चरणरज
श्री योगवेदान्त सेवा समिति

परम सुख की ओर–

संसार में रहते हुए भी जो संसार से अलिप्त है–जलमें कमलवत्–वह परम सुखी है।

ॐ

सोमवार, ८-८-७७
एच. के. आर्ट्स कालेज हॉल, अहमदाबाद.

जिज्ञासु साधक एवं अन्य श्रोताओं से भरे भवन में मंच पर पूज्य स्वामीजी अन्य तीन अतिथियों के

मध्य ध्यानस्थ मुद्रा में विराजमान हैं। सायंकाल के साढे छः बजे हैं। आज पूज्य ब्रह्मलीन स्वामीजी श्री शिवानन्दजी की पुण्य तिथि दिव्य जीवन संघ की ओर से मनाई जा रही है। इसी शुभ अवसर पर पूज्य स्वामीजी के अमृतवचनों का पावन लाभ साधकों को मिले इस निमित्त पूज्य स्वामीजी को प्रमुख वक्ता के रूप में आमंत्रित किया हुआ है।

अतिथि रूप में आमंत्रित गुजरात के गृह एवं सांस्कृतिक मन्त्री बोलने के लिये खड़े होते हैं।

गृहमन्त्री श्री व्यासजी–

सुख आवें तो सुख को भोगना और दुःख आवें तो दुखी होना यह तो मैंने जीवन में देखा और जाना है। सुख सुख है और दुख दुख है यह तो ठीक है, मगर 'परम सुख का मार्ग' इस आज के रखे हुए विषय में 'परम सुख' क्या है, यह मैं नहीं समझ सका। सुख माने सुख, उसके आगे परम शब्द मुझे विचित्र एवं अनावश्यक लगता है।

व्यक्ति को कर्त्तव्य कर्म करते रहना चाहिये। सुख दुख की परवाह नहीं करनी चाहिये। मैं तो समाज की सेवा करने में ही आनन्द अनुभव करता हूँ। मैं किसी मंदिर में भी नहीं जाता हूँ। मैं कोई

नास्तिक नहीं हूँ और इस कारण आस्तिक हू ऐसा भी नहीं है। मगर आप मुझे समझने की चेष्टा करें।

मुझे इधर आज आने में कोई रुचि नहीं थी और वैसे भी इन चीजों में मेरा झुकाव नहीं है, फिर भी मेरे एक अनन्य मित्र हैं, उनकी इधर बहुत रुचि है। उनके आग्रह को मैं टाल नहीं सका और मुझे आना पड़ा। एक छोटी सी कहानी से मैं अपनी बात स्पष्ट कर देता हूँ।

एक राजकुमार अपने साथियों सहित जङ्गल में गया था। वह रास्ता भूल गया। साथी भी बिछुड़ गए। अचानक उसे एक व्यक्ति मिला जो प्याज खा रहा था। उसने अंगुलीनिर्देश कर भूले हुए राजकुमार को उसका रास्ता दिखा दिया। राजकुमारने आभार व्यक्त करते हुए उसे अपने साथ चलने को कहा, तो वह व्यक्ति बोला—

वह तुम्हारा रास्ता है, यह मेरा रास्ता है। तुम तुम्हारे रास्ते जाओ। मुझे तुम्हारे साथ चलने की आवश्यकता नहीं। तुमको मैंने तुम्हारा रास्ता दिखा दिया—बस !

इतना कहकर मन्त्रीमहोदय अपनी कुर्सी पर बैठ गए। भवन में एक उत्सुकतापूर्ण शांति छा गई। सबके कान एवं दृष्टि स्वामीजीकी ओर लग गए।

स्वामीजी—

अभी थोड़े से समय में हमें यह जानना है कि सुख क्या है, दुख क्या है ! सुख किसे कहते हैं, दुःख किसे कहते हैं और परम सुख किसे कहते हैं ! जहाँ सुख है वहाँ दुःख है । सुख भी आता है चला जाता है । दुःख भी आता है चला जाता है । सुख भी पैदा होता है और मिटता है और जब वह मिट जाता है तो उसी अवस्था को दुख कहते हैं और वह अवस्था भी मिट जाती है । तो सुख और दुःख दोनों ही पैदा होने और मिटनेवाले हैं । मगर जिसे परम सुख कहते हैं वह तो न आता है न जाता है न पैदा होता है और न ही उसे मिटाया जा सकता है । वह प्राणी मात्र में रम रहा है, फिर भी हम उसे नहीं जान पाते । वह कैसा होता है? उसे जानने वाला स्वयं जिन्दा नहीं रहता । अर्थात् वह वही नहीं रहता जो आज तक बना हुआ है । वह कुछ और ही बन जाता है । वह स्वयं सुख स्वरूप बन जाता है । उसका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता।

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥
(गीता अध्याय ७-३)

हजारों में से कोई ही-ध्यान दीजिये ! भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—हजारों में से कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में से भी कोई विरला ही पुरुष मेरे परायण हुआ मुझे तत्व से जानता है-अर्थात् मर्म से जानता है ।

हम को बंगला मिल गया तो उसमें हम सुख मान लेते हैं । हमको मोटरकार मिल गई तो उसमें हम सुख मान लेते हैं । हमको पुत्र मिल गया, कुछ प्रतिष्ठा मिल गई, कुछ धन-कुछ वाहवाही मिल गई तो हम उसमें सुख मान लेते हैं ।

वेदान्त कहता है कि बच्चों की महफिल में होता है यह सुख ! इसको सहारा मान कर जो जीते हैं, उन्हें अन्त में रोना पड़ता है । उन्हें निराशा ही हाथ लगती है अन्त में । उनकी मुट्ठी सदैव खाली ही रह जाती है । उनको तो जैसे आए थे संसार में वैसे ही खाली हाथ निराश-मन इस दुनियाँ से कूच कर जाना पड़ता है ।

सर पर रात अंधेरी गम की,
सूनी सूनी शाम लिये ।

हम तो चले महफिल से साकी,
दिल का खाली जाम लिये ॥

यह तो साधारण सांसारिक विषयों के सुख का स्वरूप है, मगर परम सुख !

परम सुख वह है जिसको जान ने के बाद बड़े से बड़ा भारी दुखों का पहाड़ भी आकर यदि सिर पर टूट पड़े तो भी चित्त चलित नहीं होता, मन खिन्न नहीं होता। उसको जानने वाला सदैव आनन्दित रहता है ।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥
(गीता अ. ६)

"—और परमेश्वर की प्राप्तिरूप जिस (आनन्द) लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगवत्प्राप्तिरूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है ।"

ऐसा है वह परम सुख ! उसे परम सुख कहो या परमेश्वर कहो–या और कोई नाम दे दो। सभी नाम उसीके हैं। सभी नाम उसी से निकले हैं।

यह सब फकीर जानते हैं !फकीरों की बातें फकीर ही जान सकते हैं। आप सब भी कुछ देर के लिये फकीर हो जाएं। मैं आपको भी फकीर ही बनाना चाहता हूँ।

(मुक्त हास्य–तालियाँ)

मनुष्य सुबह से शाम तक किसलिये काम में जुटा रहता है ? उसकी मांग क्या है ? किसी को धन की मांग है तो किसी को सत्ता की, किसी को मिठाई खाने की तो किसी को सिनेमा देखने की। परन्तु इन सब मांगों के पीछे एक परम मांग (Demand) छिपी हुई है। जब तक वह परम मांग पूरी नहीं होती तब तक कई मांगे आएगी और जाएगी। जिनको पूरी करके हम कहते हैं–I am very happy. मैं बहुत सुखी हूँ यह happiness है। यह सुख है। यह happiness, यह सुख तो वापस चला जाएगा, स्थिर नहीं है। मगर सुखी तो वही है, परम happy तो वही हैं जिसका सुख वापस न जाए, जिसकी happiness कभी वापस न जाए। ऐसी happiness फकीरों के पास होती है। फकीर ऐसे परम सुख के मालिक होते हैं।

फकीर उसे नहीं कहते जो दाढी बढा ले, या जो फकीर का वेश पहने ले। नहीं, एक गृहस्थ भी

फकीर हो सकता है। एक मिनिष्टर भी फकीर हो सकता हैं।

बाहर की फकीरी से फकीरी हासिल नहीं होती। जिसने जीवन व मौत को देख लिया है, जिसको सुख में राग नहीं और दुख से भय नहीं, जिसको अनुकूल परिस्थिति की पकड़ नहीं और प्रतिकूल परिस्थिति से द्वेष नहीं, जो सब परिस्थितियों में अपनी आत्म मस्ती में रहता है—वह फकीर है।

समाज फकीर का उलटा अर्थ चाहे कैसा भी लगा ले उसके लिये फकीर जिम्मेदार नहीं है।

बच्चे से लेकर बूढे तक, मूर्ख से लेकर समझदार तक, जनता से लेकर मिनिष्टर तक सभी दुख से बचना चाहते हैं और सुख को पाना चाहते हैं। परिस्थिति जन्य सुख या वस्तुगत सुख किसी मूर्ख को मिला हो या मिनिष्टर को या विद्वान को या इन्द्र को भी मिला हो, फिर भी वह आभास मात्र है, सुखाभास है, वास्तविक सुख नहीं। उस सुख के इर्द गिर्द दुख नाच रहा है। उसके भोग में दुख छिपा है।

परम सुख स्वतंत्र सुख है। उसको वे फकीर ही जानते हैं जिन्होंने अपनी तृष्णाएं मिटा दी हैं। जो वासनाओं के गुलाम नहीं हैं।

वासनाएं कभी पूरी नहीं होती। एक पूरी हुई नहीं कि दूसरी तुरंत उसका स्थान ले लेती है। मांग बनी रहेगी। बुद्धि जब तक परम तत्व में विश्रान्ति नहीं लेगी तब तक परम सुख कहाँ? तब तक जन्म मरण खत्म नहीं होता।

एक व्यक्ति रसगुल्ला खाना चाहता है। उसे यदि रसगुल्ला दे दिया जाय तो उसे सुख होगा, मगर दूसरा व्यक्ति जो रसगुल्ले खाकर तृप्त हो चुका है, उसे यदि रसगुल्ला जबरदस्ती दिया जाय तो उसे दुख होगा। एक को खाने से सुख हो रहा है, दूसरे को खाने से दुख हो रहा है।

स्वामीजी को कहो कि चलो थलतेज (सिनेमा घर) सिनेमा देख आएं।....उनको पसंद नहीं आएगा। उनके सामने तो सारा संसार ही सिनेमा है। उन्हें यह कहना मानो उनका अपमान करना है। मगर आपके घर कोई अतिथि आया है, उसे सिनेमा देखने न ले जाना एक तरह से उसका अपमान करना है एक को सिनेमा दिखाना उसका अपमान करता

है, दूसरे को सिनेमा न दिखाना उसका अपमान करना है। ये सब परिस्थिति-जन्य सुख हैं, वस्तुगत सुख हैं, बाह्य सुख हैं। ये परिस्थिति पर, वस्तुओं पर निर्भर हैं, वासना पर निर्भर हैं। परम सुख-स्वतंत्र सुख है। वह ब्रह्मानन्द है, आत्मानन्द है, परमानन्द है। उसके कई नाम हैं।

समझो कि मेरा प्रिय मित्र विदेश में रहता है। उसकी चिट्ठी नहीं आई। बड़ा व्याकुल हूँ। एक दिन पोस्टमेन उसकी चिट्ठी देता है। मैं खुश हो जाता हूँ। उसने लिखा है कि एक अप्रेल को अहमदाबाद पहुँच रहा हूँ। अब बड़ी बेकरारी से एक अप्रेल की प्रतीक्षा होने लगी। ३१ मार्च की रात्रि आखों में बीत रही है, बहुत लम्बी लग रही है-काटे नहीं कट रही है। कब सुबह होगी और मैं अपने मित्र से मुलाकात करने जाऊँगा...! मेरा परम मित्र जो आ रहा है।

मेरी ही बात नहीं है, आप अपने जीवन में इस घटना को आरोपित करके देखें।

...तो सुबह हुई। मैं पहुँचा एरोड्राम पर। परन्तु वहाँ सुना कि प्लेन मौसम की खराबी की वजह से २ घंटा लेट है। अब खुशी की जगह चिंता शुरू हो गई। दो घंटे कब बीतेंगे! और-ऐसा तो

नहीं कि कहीं विमान दुर्घटनाग्रस्त हो जाय! कहीं मेरा मित्र मुझ से छिन न जाय! फिर मैं दुनिया में अकेला क्या करूँगा-ऐसी कल्पना मात्र से मेरी सारी खुशी गम में बदल गई। जैसे-तैसे २ घंटे बीते। प्लेन उतरा। उसमें से लोग उतरने लगे। एक, दो, तीन, चार, पांच उतरे-मगर मेरा मित्र...! इसमें आया भी है कि नहीं!...नहीं नहीं, आया तो जरूर होगा। उसने चिट्ठी में स्पष्ट लिखा है। आज की ही तारीख लिखी है। हृदय ने इस बीच खुशी और गम के कई गेयर बदल लिये। अचानक मेरा मित्र उतरता दिखाई देता है! वही चेहरा है। नवीन विदेशी पोशाक पहने हैं। उसकी नजर मेरी नजर से मिलती है और मैं अब अपने को थाम नहीं सका और चिल्ला पडता हूँ—

'हैल्लोऽऽऽ मिस्टर...!'

दूसरे ही क्षण हम एक दूसरे की बाहों में आ गए। दोनोंके हृदय में खुशी की एक लहर दौड़ गई। बहुत दिनों से जिस खुशी की इंतजारी थी वह मिल गई। परन्तु हम आखिर कितनी देर एक दूसरे की बाहों में आबद्ध रह सकते थे। एक दूसरे से अलग होना ही पड़ा। अब यदि अधिक देर आबद्ध रहे तो...! तो सुख दुख में बदल जायेगा। खुशी

गम में बदल जाएगी। जो इतने दिनों की इंतजारी के बाद खुशी की अेक लहर आई थी, वह भी चली गई। वह भी केवल लहर मात्र ही थी। सुख का आभास ही थी। अब मित्र को अधिक दिन यदि घर में बसाए रखूँ तो आपस में छोटी छोटी बातों से तकरार होने लग जाएगी। अब जल्दी से जल्दी मित्र से दूर होने के लिये व्याकुल होने लगूंगा कि कितनी जल्दी इससे पिन्ड़ छूटे।

तो हर्ष की, खुशी की यह लहर है, यह केवल सुखाभास है। यह बाह्य सुख है। यह आशा पर आधारित है, इच्छा पर आधारित है-वस्तु पर आधारित है। यह वस्तु की गुलामी कराता है। यह समय और परिस्थिति की गुलामी पर आधारित है। यह स्वतंत्र नहीं है।

संसार के सारे सुख जो देशकाल और परिस्थिति पर निर्भर हैं, जो इन्द्रियजन्य हैं, वे सभी आने जाने वाले हैं, तुच्छ हैं, क्षणिक हैं और अन्त में निराशा व दुःख के ही जनक हैं।

परम सुख किसी के अधीन नहीं है। वह देशकाल अथवा परिस्थिति से प्रभावित नहीं है! वह अपना

आपा है। चाहे आकाश फट पड़े, रात का दिन हो जाय, सूरज का गोला टूट जाय, सारा मकान, जायदाद लुट जाय, सारे मित्र शत्रु बन जाय, सारे मान-प्रतिष्ठा मिट्टी में मिल जाय, फिर भी परम सुख को धक्का नहीं लगता। उसको तो इन धक्कों की हवा भी नहीं लगती।

ऐसा है वह परम सुख!

और हम तो हमेशा देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानते रहते हैं: हे भगवान! मेरी नौकरी टिकी रहे। बजरंगबली, मेरा शत्रु मर जाय। मुकदमे में मेरी जीत हो जाय। हे शंकर भगवान, मैं परीक्षामें पास हो जाऊं। हे प्रभु! मुझे आज्ञाकारी सुन्दर पत्नी मिले।...यह सब क्या है?

हम सब सुख और दुख के थपेड़े खाने के ही आदी हो गए हैं। उससे ऊपर हम कभी उठना नहीं चाहते। हम जरा ऊपर उठ कर सोचें कि आखिर यह सब सुख और दुख आता है उसे कौन जानता है? उसका द्रष्टा कौन है? वह कौन है जो सुख को आता हुआ देखता है और दुख को भी आता व जाता हुआ देखता है? उसका पता लगाएं। उसको जाने बिना सच्ची शांति कभी प्राप्त नहीं होगी। उसको जान लेना ही मनुष्य मात्र का प्रमुख कर्त्तव्य

है, धर्म है। इस मानव जन्म का सार्थक्य उस अपने आप को जानने में ही है। वह अपना आपा ही शाश्वत है। मेरा आपा वही है जो स्वामी शिवानन्द का आपा था, जो व्यासजी का आपा है, जो आप सब का अपना आपा है। यह अपना आपा ही परम सुख का-शाश्वत सुख का भण्डार है। उसे जान लेना ही परम सुख की प्राप्ति है।

अपने मंत्री महोदय ने अभी कहा कि मैं तो कभी मंदिर-मस्जिद में जाने में विश्वास नहीं रखता। बस, अपनी और अपने समाजका काम करना, यही मुझे तो रुचता है। फिर आस्तिक हूँ। या नास्तिक हूँ इससे भी मुझे क्या लेना देना, तो मैं प्रसन्न ही हुआ। मुझे लगा कि (मन्त्री महोदय की ओर मधुर मुस्कान के साथ देखते हुए) ये भी अपने वाले ही हैं। हमारा इनसे अच्छा मेल हो सकता है।

(सभी श्रोता ठहाका मार कर हँस पड़ते हैं।)

मैं जब घर से भागा था तो कई महन्तों से मिला, कई मंदिरों में भी गया था। कईयों ने मुझे शिष्य बनाने की कोशिश की थी। कई प्रलोभन भी दिये थे। मैं भगवान की मूर्ति के आगे भावावेश में आकर घण्टों रोया भी करता था। उस समय

समय थोड़ी मन को शांति मिलती थी, मगर पूर्ण संतोष नहीं होता था। बाद में परिस्थिति बदलते ही देखता था कि मुझे सुख दुख तो होता है। बाद में पता लगा कि वह आनन्द मेरे भाव आरोपण का ही आनन्द है। मूर्ति तो केवल निमित्त बनती थी।

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृण्मये।
भावो हि विद्यते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम्॥

लकड़ी में, पत्थर में या मिट्टी की मूर्ति में भगवान नहीं है। हमारी उसमें भगवान की भावना करना ही उसे भगवान बनाती है। अतः भाव ही प्रमुख है।

यह भाव बनाने वाले जो हम हैं, जो हमारा अपना आपा है, उसे जानना ही परम सुख का रास्ता है। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन का रथ चलाते थे, उसके घोडों की सेवा करते थे, वर्षों अर्जुन के साथ रहे, परन्तु अर्जुन का दुख दूर नहीं हुआ। दुख तो तभी गया जब श्री कृष्णने उसे पूरी गीता सुनाई और उसने अपने आपे को पहचाना। तभी अर्जुन ने कहा—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देह करिष्ये वचनं तव ॥

(गीता अ. १८)

'हे अच्युत । आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है, मुझे स्मृति प्राप्त हुई है, इसलिये अब मैं संशयरहित अपने आप में स्थित हूँ । मैं आप की आज्ञा का पालन करूँगा ।'

यह है भगवान को तत्त्व रूप से जानना । इसको जाने बिना परम शांति प्राप्त नहीं होती । आप सब कार्यकर्ता साधक गण स्वामी शिवानन्द की पुण्यतिथि की आड़ में कुछ कार्य कर रहे हैं । परन्तु इससे उनके तत्त्व में कोई बढ़ोतरी या घटौती नहीं होती है । वह तो पूर्ण है । लेकिन कार्य करने से हमारा हृदय शुद्ध होता है और शुद्ध हृदय में आत्मतत्त्व प्रकाशित होता है, इसलिये आनन्द की अनुभूति होती है ।

तो मेरे को कोई पंथ वाले मिलते थे और कहते थे कि तुम हमारे पंथ में आ जाओ, हम तुम्हें सच्ची शांति दिलाएंगे, तो मैं उनसे पूछता था कि आपका पंथ कब से प्रकाश में आया है ?

तो यह सारे सांसारिक सुख हमारी मान्यताओं के सुख हैं ।

कोई भाई है, कोई बहन है; कोई पति है, कोई पत्नी है; कोई मित्र है तो कोई शत्रु है । ये सारे सम्बंध हमारे माने हुए हैं । ये सब हमारी सांसारिक मान्यताएँ हैं ।

किसी की मान्यता है कि धन में सुख है । किसी को पद में सुख दिखता है । किसी को प्रतिष्ठा में, तो किसी को पुत्र में सुख दिखता है । किसी को पत्नी में सुख दिखता है ।

वेदान्त कहता है कि सुख इसमें या उसमें नहीं है । सुख तो अपने आपमें है ।

जब हम किसी में सुख मानते हैं, तभी उसमें हमें सुखाभास होता है ।

"Young person says, life is full of joy, but wise person says, life is full of sorrow." एक युवक कहता है, जिन्दगी में सुख ही सुख है, मगर बुद्धिमान पुरुष कहता है कि

जीवन में दुख ही दुख हैं। कहीं सुख नहीं है। सब असार है।

जब हमारी मांग पूरी होती हैं, जब हमारी मान्यता के अनुकूल कार्य होता है तो उस समय-विशेष के लिये हमारी वृत्ति शांत हो जाती है और उस शांत अवस्था में हमें सुख का अनुभव होता है। तो हम सोचते हैं, उस वस्तु में से सुख मिलता है।

एक कामुक व्यक्ति कहता है—स्त्री का शरीर तो ब्रह्माजीने अपने ही हाथों से अमृत में से बनाया है। उसका चेहरा मानो चौदहवीं का चान्द है। उसके दांत मानो अनार की कलियाँ हैं। उसकी नासिका तोते की चोंच जैसी है और आंखें चञ्चल हिरनीकी आँखे हैं मानो। यह सब व्यक्ति की अपनी कल्पना का आरोपण है। उसकी अपनी मान्यता है। यदि उसी स्त्री के शरीर को तत्त्व दृष्टि से निरीक्षण करेगा तो यह तोता, यह चौदहवी का चाँद, यह चञ्चल हिरनी और अनार की कलियाँ आदि सब विदा हो जाएगी। सुबह उठते ही देखेगा तो उसी नाक में से लींट की दुर्गंध तथा मुँह और दांतो में से भी दुर्गंध आती नज़र आ जाएगी। और तो और इस शरीर पर यदि चमड़ी न चढ़ी हुई हो तो

यह शरीर कोई देखना भी पसन्द करेगा क्या? सैकड़ों मक्खियाँ इसी शरीर पर भिनभिनाती नजर आएगी। कहाँ है सुख स्त्री शरीर में! यह सब सुख की भ्रांति हमारी इन्द्रियगत भ्रांति है, हमारा दृष्टिभ्रम है। यह रेगिस्तानी मृगतृष्णा है। यह सुख कभी मिलता नहीं, केवल सुखाभास होता है। हम केवल इसी सुखाभास को सुख मानकर जीते रहते हैं। इसी को सुख नाम दे देते हैं। इसलिये जो इन्द्रियातीत शाश्वत सुख है, जो स्वतंत्र सुख है, वस्तुपराधीन नहीं है जो सुख-उसको परम सुख का नाम देना पड़ता है। वस्तुतः यह नाम भी उसके अयोग्य है। उसके अर्थ को स्पष्ट करने की क्षमता से रहित है। उसको शब्दों में वर्णन ही नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह वाणी और मन से भी परे है। जिन्होंने उसे जाना है, वे कहते हैं-

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'

मन के साथ वाणी जिसे न पाकर जहाँ से लौट आती है।

'न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति'।

वहाँ न आँखों की पहुँच है न वाक्यों की।

मेरे ख्याल से मेरे बोलने के समय का कोटा पूरा हो गया है। क्या समय हुआ है?

कहकर स्वामीजी संचालक की ओर मधुर मुस्कान के साथ देखने लगे। संचालक भी स्वामीजी की ओर देखकर मुस्कुरा दिये।

स्वामीजी—क्या है? मेरे पास घड़ी नहीं है, इसलिये पूछता हूँ।

संचालक—समय तो पूरा हो गया है, फिर भी आप कहिये।

हाल में बैठे कुछ श्रोतागण—'आप कहिये, हमें सुनना है।

स्वामीजी-क्या करें...कहा भी न जाए चुप रहा भी न जाए।

(स्वामीजी सहित सभी हँस पड़ते हैं।)

स्वामीजी-कह तो दूँ...पर जरा.... खैर। आप भी सुनने को तैयार हैं तो कहना ही पड़ेगा। बाबा काली कमलीवाले द्वारा रचित 'पक्षपात रहित अनुभव प्रकाश ग्रंथ' में ऋषि पाराशर और मैत्रेय का संवाद आया है। पाराशर कहते हैं—

"अरे मैत्रेय! यहाँ सत्संग में तो तेरे को समय

का ध्यान रहता है और बार बार घड़ी देखता है, परन्तु रात-रात भर स्त्री के नश्वर शरीर का चमड़ा चूथता है (चाटता है), उस समय तेरे समय का ख्याल कहाँ चला जाता है?...जहाँ समय का ख्याल नहीं रखना है वहाँ तो रखता है और जहाँ समय का ख्याल रखना है वहाँ रखता नहीं!"

(स्वामीजी के वाक्य बड़े सचोट हैं। वातावरण थोड़ा गंभीर हो जाता है। ऐसे सत्य व कठोर वचन महापुरुष ही कहने के अधिकारी होते हैं और जब वे कहते हैं तब निश्चित ही उनका असर सुनने वालों के हृदय तक होता है।)

"कथा-कीर्तन रात-दिन जिनका उद्यम एह।
कहे कबीर वा संत की हम चरणन की खेह॥"

लोग कहते हैं, हमने बहुत कथाएं सुनी हैं, बहुत शास्त्र पढे हैं। कई सन्तों का संग भी किया है। मैं कहता हूँ, तुमने अभी कुछ नहीं सुना है। किसी सच्चे फकीर का संग नहीं किया है। फकीर तुम्हें मिला ही नहीं है अभी तक! यदि फकीर मिल जाय तो मजाल है कि एक क्षण भी उससे जुदा रह सको, उससे अपना हाथ छुड़ाकर जा सको!"

कहकर स्वामीजी मन्त्री महोदय की ओर मुस्कु-

राकर देखने लगे। मन्त्री महोदय की अब तक लगता है सारी पुरानी मान्यताएँ बिखर चुकी हैं। वे भी हाथ जोड़े हुए स्वामीजी की ओर सरल मुस्कान के साथ नम्र भावसे देखने लगे। स्वामीजीने अपना दाहिना हाथ ऊपर आकाश में उठाया। मन्त्रीजी ने भी दाहिना हाथ सामने किया ओर स्वामीजी ने सबके देखते देखते उनके सामने किये हुए हाथ पर जोर दार ताली बजा दी...

यह क्या हुआ !

सभी ठहाका मार कर हँस पड़े हैं। यह व्यवस्थित पद्धतिनुसार प्रवचन है या श्रोताओं से सरल बातचीत है। संतों की लीला कौन क्या समझें ! वे कब क्या करते हैं और क्यों करते हैं यह सीमित बुद्धि वाला हर कोई मानव क्या समझ सकता है ! मगर इतना सबकी समझ में आ रहा है कि स्वामीजी कोई दूसरे नहीं हैं जो उपदेशक की भूमिका निभा रहे हों। यहाँ तो श्रोता और प्रवचनकार एक हो गए हैं। लगता है, हृदय से हृदय की बात हो रही है। मुख और कान की बाधा ही हट गई है। दिल में बात वही असर करती है जो दिल से निकली हो। ऐसा वातावरण वे महापुरुष ही पैदा कर सकते हैं जिन्हें सर्वत्र आत्मभाव ही दृष्टिगत होता है। जो सदैव आत्मभाव में ही विचरते हैं।

स्वामीजी—

स्वामी शिवानन्द अपने व्यक्तित्व को सत्य के ऊपर कुर्बान कर चुके थे। वे अपना देहध्यास मिटा चुके थे। वे फिर किसी व्यक्ति विशेष के गुरु नहीं रहे। वे उस परम तत्त्व में आत्मसात हो गए जिसमें एक दिन सबको होना ही है आत्मसात। देर-सबेर सभी को पहुँचना ही है वहाँ। वहाँ पहुँचे बिना कोई शांत हो ही नहीं सकता। तब तक भटकना ही भटकना है। भगवान श्री कृष्ण भी अर्जुन को बार बार यही कहते हैं—

तपस्विभ्योऽधिको योगी
ज्ञानिभ्योऽपि मतोधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी
तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

(गीता अध्याय ६)

'क्योंकि योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है और शास्त्र के जानने वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है, इसलिये हे अर्जुन! तू योगी हो।'

हे अर्जुन, तू वहीं पहुँच जा। शिवः आनन्द

इति शिवानन्द। ऐसा आनन्द जहाँ हर्ष और शोक की पहुँच नहीं है। आप हम सब भी उसी आनन्द के अधिकारी हैं। वही आनन्दमय परम तत्त्व हममें अभी भी रम रहा है, मगर हम उसे भूले हुए हैं। हमारी नजर उधर नहीं है :

वो थे न मुझसे दूर, न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर, तो नजर का कसूर था॥

वही सबका मूल है। सभी नाम रूप वहीं से निकले हैं। वही हमारा असली घर है, अपना असली आपा है। उसको नहीं जानने के कारण ही हम लोहा–लकड़–ईंट–चूना का संग्रह करते हैं और कहते हैं, 'यह मेरा है'। यही हमारा अज्ञान है। वस्तुओं पर अधिकार करके जब जब भी 'मेरा है'–'मेरा है' कहा है, मनुष्यने ही कहा है, वस्तुओं ने कभी नहीं कहा कि हम किसी की हैं। इस 'मेरे है' के अधिकार को घोषित करके संसार के जितने झगड़े हुए हैं, उसके मूल में यही हमारा अज्ञान छिपा है। जब तक यह अज्ञान नहीं मिटेगा मनुष्य महान नहीं हो सकता। स्वामी शिवानन्द, विवेकानन्द, रामतीर्थ, गुरु नानक आदि बड़े थे नहीं, मगर हो गए। उन्होंने अपने आपको मिटा दिया था उस परम तत्व में। उनकी स्वयं की कोई मांग ही नहीं रही थी।

हमारी मांगें और वासनाएं ही हमें दीन बनाती हैं। ये ही हमारे शाश्वत् सुख स्वरूप को ढंक देती हैं।

व्यक्ति शादी की इच्छा करता है, तो शादी हो जाती है। फिर बच्चा नहीं होता तो संतों के पास जाकर रोता है–"बापू ! पत्नी की गोद हरी हो जाय !" अरे ! जिन बापू के आगे तू रो रहा है, उनमें भी वही है जो तुझमें है। दोनों में वही ईश्वर है, मगर एक तरफ मांग है, इसलिये दीन बन रहा है और दूसरी तरफ कुछ अपनी चाह नहीं इसलिये शाहों का शाह बना घूम रहा है।

अब लड़का पैदा हो गया। उसका चाँद सा चेहरा देखकर सारी थकान उतर जाती है। मगर कुछ समय बाद सब गड़बड़ हो गया। वह शरीर छोड़ जाता है। मेरा लड़का था, सुन्दर था, सलौना था–उसकी याद कर कर के रोता है।

वेदान्त कहता है न तो किसी के आने से कुछ सुधरता है न किसी के जाने से कुछ गड़बड़ होता है। घटनाएं घटती रहती हैं, मगर हम अपनी मान्यताओं और इच्छाओं के कारण उनमें ममत्व बुद्धि करके हँसते और रोते रहते है। सारी इच्छाएं

तो इन्द्र की कभी पूरी नहीं होती। फिर भी हम अपनी इच्छाओं को ही पूरा करने में सारी उम्र भर लगे रहते हैं। वे कभी पूरी होती नहीं और हम ही पूरे हो जाते हैं।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो रोता हुआ जन्मता है, फरियाद करता हुआ जीता है और निराश होकर मरता है।

स्वामी शिवानन्द का आदर्श था, 'मनुष्य को उस ब्रह्मानन्द की ओर ले जाने का।' उसी दृष्टि से आज कई जगह काम हो रहा है। मोटेरा आश्रम में जो काम हो रहा है, उसमें भी वही दृष्टि है।

आज स्वामी शिवानन्द की पुण्य तिथि है। मैं आप सबकी बड़ाई या वाह वाह तो कैसे करूँ? वाह वाही तो दूसरों की की जाती है। वाह वाही करके मैं आपको अपने से दूर नहीं करना चाहता। मैं तो कहूँगा कि आप सब इतनी प्रवृत्ति करें कि अपने आपको भी भूल जाएँ। आप उसी में गुम हो जाएं। अब प्रार्थना करें—

हे प्रभु !

(सभी दोहराते हैं)

हे प्रभु !

हम सब गुम हो जाएं

खो जाएं,

डूब जाएं

मर जाएं,

उस आनन्द के रस में।

हे प्रभु !

हे घट घट वासी !

हमारे हृदय में प्रगट हो !

ॐ ॐ ॐ

सबसे उत्तम तो यह है कि किन्हीं आत्मज्ञानी महापुरूष का सांनिध्य मिल जाय।

अपने मौलिक स्वरूप को जान लेना ही परम पुरुषार्थ है–

मणीनगर (अहमदाबाद)
३१-८-७६ मंगलवार

रात्रि के साढ़े ग्यारह बजे हैं। स्वामीजी के एक भक्त के घर का विशाल कक्ष अभी भी श्रोताओं से

भरा हुआ है। कोई जाने की तैयारी नहीं दिखला रहा है। बाहर-भीतर सर्वत्र शांति छाई हुई है। भवन में दीपक का हल्का प्रकाश हो रहा है। प्रवचन का कोई विचार न होते हुए भी लोगों की जिज्ञासा देखकर स्वामीजी अपने मधुर वचनों में कहने लगे :

स्वामीजी–जगत में इन्सान रोता हुआ जन्मता है, फरियाद करता हुआ जीता है और निराश होकर मरता है। हर मनुष्य मरता है, क्योंकि मनुष्य मरणधर्मा है, मेन इज मोर्टल (Man is mortal) हर एक यह अच्छी प्रकार जानता है। वह दूसरों को मरते हुए देखता है, परन्तु मरने की बात दूसरों पर डाल देता है। स्वयं नहीं मरना चाहता। ५० वर्ष वाला ६० वर्ष जीना चाहता है, ६० वाला ७० वर्ष और ७० वाला और अधिक जीना चाहता है। वह स्वयं के मरने की कल्पना भी नहीं करना चाहता। अन्दर में वह जानता है कि एक दिन मुझे भी मरना पड़ेगा, मगर अपनी मौत को वह स्वीकार नहीं करना चाहता। ऐसा क्यों, बोलो ?

भवन में कुछ देर शान्ति रहती है। सामने रखा घी का दीपक बिना काँपे जल रहा है। कुछ लोग उसकी ओर एकाग्र चित्त से देख रहे हैं। जब

स्वामीजी ने पुनः कहा बोलो, ऐसा क्यों ? तो एक बोला – 'क्योंकि मनुष्य को मोह होता है।'

स्वामीजी – मोह तो सभी को होता है। पशुपक्षी आदि को भी होता है। कुत्ता, बिल्ली आदि भी मोह करते हैं, तभी तो वे बच्चों को पालते हैं, उनको रक्षा करते हैं, उनको संभालते हैं। यह मोह से ही होता है। परन्तु मनुष्य की बात भिन्न है। वह कोई विशेष आनन्द चाहता है। उसका अन्तःकरण अन्य पशु-पक्षियों की अपेक्षा बहुत विकसित होता है। वह सोच सकता है कि मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हू, कहाँ जाना है मुझे ! यह सब मैं क्यों कर रहा हूँ ? इसके बाद में आखिर क्या होगा ? यह सब वह विवेकपूर्वक विचार कर सकता है। उसके सूक्ष्म शरीर की ऐसी विशेषता, उसकी ऐसी रचना है, उस पद को पाने की ऐसी योग्यता है कि जिस पद के आगे कोई पद नहीं है और जिसको प्राप्त करने के बाद सभी दुःख-क्लेशों का अन्त हो जाता है। सारे संताप मिट जाते हैं।

गीता में कहा है —

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥
गीता. अ. ६/२२

'परमेश्वर की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और भगत्प्राप्तिरूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है।

यह ब्रह्मज्ञानी की स्थिति है। ब्रह्मज्ञानी के लिये मौत या जिन्दगी है ही नहीं। वह जीते हुए भी नहीं जीता और मरते हुए भी नहीं मरता। वह अपने स्वरूप में स्थित होता है। संसार के सारे व्यवहार उसकी देह से होते हैं, परन्तु वह स्वयं देह भाव से ऊपर होता है —

ब्रह्मज्ञानी सदा निरलेपा
जैसे जल में कमल अलेपा।
(सुखमनी साहेब)

ऐसे पद का विचार मनुष्य कर सकता है। पक्षियों में यह विशेषता नहीं होती। वे खाते हैं, पीते हैं, डाल डाल पर फुदकते हैं और अपना जीवन पूरा कर जाते हैं। पशु अथवा पक्षी ऐसा जीवन जीते हैं, परन्तु उनके हृदय में इस प्रकार का कोई विचार उदय नहीं होता। उनकी बुद्धि की दौड़ भोग भोगने से आगे की नहीं है।

मनुष्य जीवन की योग्यता व सामर्थ्य है परमानन्द की प्राप्ति, आत्मसुख की प्राप्ति, मगर मिलते हैं सांसारिक सुख। वैषयिक क्षणिक सुख ही मनुष्य प्राप्त कर पाता है। मनुष्य की वेल्यू (Value) योग्यता तो अधिक है, पर उसे मिलता है कम; तो उसे संतोष कैसे होगा! इसलिये वह निराश होता है। जैसे आपके पास नौकर हैं, टी.वी. (टेलीवीजन) है, फ्रीज (रेफरीजेटर) है, कार है, बंगला है, पर आपकी हस्ती (योग्यता) है सृष्टिका मालिक होने की तो आपको इनसे सन्तोष कैसे होगा! तो उसका स्वभाव है अपने आत्मा के आनन्द की ओर दौड़ने का, परन्तु अज्ञानवश ऐन्द्रिक सुखों की प्राप्ति में उसे ढूँढता है।

जो बुद्धिपूर्वक सोचता है कि रोज सुबह-शाम वही खाना-पीना, सोना, उठना-बैठना, धंधा करना- पर आखिर क्या! संसार की वस्तुओं में सुख तो मिला, परन्तु वह स्थिर नहीं रहा। ऐसा शाश्वत सुख कहाँ मिलेगा, जो स्थिर रहे उसको मैं पाऊँ तो समझो उसकी बुद्धि विरहित है। वह अवश्य अपने आत्मिक कल्याण के मार्ग पर आगे बढ़ेगा। परन्तु जो ऐसा नहीं सोचते, और सांसारिक सुखों में ही संतोष मान लेते हैं तो समझो उनकी बुद्धि

पाश्विक बुद्धि है, वह पशु समान है, क्योंकि ऐसा आचरण पशु ही करते हैं। यह मनुष्योचित आचरण नहीं है।

'आहार, निद्रा, भय, मैथुनञ्च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।'

खाना-पीना, सोना, भय के प्रसंग पर भयभीत होना व बच्चे पैदा करना यह तो पशु भी करते हैं।

अपने मनुष्य जीवन की दुर्लभता समझकर आत्मसाक्षात्कार करने की बजाय यदि मनुष्य ऐहिक (सांसारिक) सुखों की प्राप्ति में ही अपने जीवन की इतिश्री समझ लेगा, तो उसे निराशा ही हाथ लगने वाली है।

राजा भर्तृहरि का कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक फैला विशाल साम्राज्य था। परन्तु उससे भी उसे सुख नहीं मिला। उसने कहा —

जब स्वच्छ सत्संग कीनो तब कछु कछु चीनो।
मूढ़ जान्यो आपको हरयो भव ताप को ॥

यानि जब मैंने सत्संग किया अर्थात् तत्त्ववेत्ता महापुरुषोंका सान्निध्य प्राप्त किया और वेदान्त का सत्संग सुना तब मेरी आँखें खुली और मैंने जाना कि अब तक मैं मूढता में ही जीता रहा। संसार के सारे सुख क्षणिक हैं, शाश्वत कोई नहीं। जिसको छोड़ना ही है उसे पकड़ रहा हूँ और जो सदैव मेरे साथ है उसको छोड़ता जा रहा हूँ, यह मेरी मूढता ही तो है! इस मूढता का ज्ञान अब मुझे हुआ है।

अपने आश्रम के पास में एक गधेवाला रहता है। जब वह आकर यहाँ बसा तो थोडी बहुत आश्रम से सहायता कर दी गई और भगवान की दया से अब उसका धंधा आदि ठीक चल रहा है। अब कभी वह मिलता है तो कहता है—"स्वामीजी! अब तो लीला लहर है। हमारे जातिवालों के तो सबके कच्चे मकान हैं, परन्तु आपकी दया से मेरा तो यहाँ आने के बाद यह पक्का ईंटों का मकान बन गया है। वह जो दूसरा हमारा जातिभाई है, उसके तो ७ गधे थे, उसमें से ३ तो मर गए और हमारे तो एक भी नहीं मरा। हमारे पास ६ ही गधे थे, परन्तु अब १० हो गए हैं। सब स्वस्थ हैं। धंधा भी ठीक चल रहा है। लडका-लडकी दोनों की सगाई भी कर दी है। स्वामीजी, आप की दया से

अब आनन्द ही आनन्द है। बापू ऽऽऽ! लीला लहर है...।"

इतना कहकर स्वामीजी हँस पड़ते हैं। उनके सब भक्त गण भी हँस पड़ते हैं। गंभीर वातावरण थोड़ा हलका हो जाता है।

स्वामीजी—वह अपनी जाति में अपने आपको शहंशाह की तरह मानता है। हम लोग जिनके पास कार है, बंगला है, अन्य सुख सुविधा के साधन हैं, उसकी बात पर हँसते हैं, क्योंकि हमारे ऐशो-आराम के साधनों के आगे उसके सुख के साधन तो कोई कीमत ही नहीं रखते। वे अति अल्प हैं, नहीं के बराबर हैं, फिर भी वह सुख मान रहा है। हमें यह उसकी मूढता लगती है कि इतने में ही वह सन्तोष मान रहा है! परन्तु हम भी इतने साधनों के होते हुए भी उसके भाई हैं यदि उसी की तरह हम भी इन्हीं साधनों में सुख समझ रहे हैं तो।

हकीकत में हम शाश्वत् सुख चाहते हैं। पदार्थों में वह मिलता नहीं। क्योंकि सुख बाह्य पदार्थों में है ही नहीं। सुख स्वरूप तो अपना आत्मा है। अपने आत्मा में ही सुख है।

यदि वह सुख मनुष्य को वैसे ही सीधे मिल जाय, कोई महापुरुष उसका स्वाद चखा दे तो वह पदार्थों को सूंघेगा ही नहीं । पदार्थों में सुख नहीं हैं । यदि होता तो गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी और भर्तृहरि जैसे राजा क्यों समस्त राजपाट छोड़कर अरण्य में जाकर संतों की शरण लेते !

संसार के पदार्थ इन्द्रियों को सुखरूप लगते हैं। ये पदार्थ हमें सुखाभास कराते हैं। जैसे यह बिजली का पंखा है, यह फ्रीज है, यह सोफासेट है। ये सब साधन ऐन्द्रिक सुख (क्षणिक सुख) के साधन हैं। इनका उपयोग हम भले ही करें, पर इनमें आसक्त न हो जाएं । इनमें मोह नहीं रखें, क्योंकि एक दिन तो इनको छोड़ना ही पड़ेगा ।

दुनियाँ में आज तक ऐसा कोई व्यक्ति पैदा नहीं हुआ जिसे अपना सर्वस्व छोड़ने की फर्ज न पड़ी हो ।

अपना विश्व विजेता बनने का ख्वाब साकार करने के लिये सिकन्दर ने लडाइयों में लाखों लोगों की हत्या का पाप सिर पर लिया था। उसने अखूट दौलत इकट्ठी की थी। मगर दुनियाँ ने देखा कि

जब वह इस संसार से बिदा हुआ तो उसके दोनों हाथ खाली थे। जर्मनी के हिटलर और इटली के मुसोलिनी तानाशाहों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने की खातिर समस्त विश्व को विश्व-युद्ध की भट्टीमें झोंक दिया था। मगर दुनियाँ जानती है कि वे एक साधारण व्यक्ति की तरह भी शांति से नहीं मर सके।...वे भी कुछ साथ नहीं ले जा सके। वे बम के धड़ाके में मरे अथवा उन्होंने लज्जावश अपनी आत्महत्या कर ली-इसके बारे में इतिहास अभी भी ठीक से नहीं बताता। 'असंभव शब्द मेरी डिक्सनरी (शब्दकोष) में नहीं है' ऐसा स्वाभिमान के साथ दुनियाँ के सामने कहने वाला और कई भीषण युद्धों में विस्मयकारी सफलता प्राप्त करने वाला फ्रांस का नेपोलियन बोनापार्ट भी अन्त में विवश होकर शत्रुओं द्वारा पराधीनता की शृंखलाओं में निर्दयतापूर्वक जकड़ा गया और जब संसार से बिदा हुआ तो अपना सब राज-वैभव, मान-अपमान यहीं छोड़कर गया। दूसरे देशों की जातियों पर बर्बरता से आक्रमण करने वाला तेमूरलंग हो अथवा लोगों की हत्या करने में निर्दयता को भी मात करने वाला नादिरशाह हो, विश्व विजेता का ख्वाब देखनेवाला युनान का सिकन्दर हो अथवा विश्व युद्धों में समस्त मानवता को झोंकदेनेवाला तानाशाह

हिटलर हो, दुनियाँ की किसी भी विपत्ति में हार न मानकर युद्ध करने का दम भरने वाला फ्रांस का नेपोलियन हो अथवा लोहपुरुष की पदवी धारण करने वाला रूस का स्टेलिन हो-कोई भी हो, परन्तु जब इस फानी दुनियाँ से गए तो दुनियाँ का धन, दुनियाँ की मान प्रतिष्ठा दुनिया में ही छोड़कर गए, कुछ भी साथ नहीं ले जा सके।

यह सब कुछ हमने देखा है, सदियों से देखते चले आ रहे हैं, जानते हैं कि इतने बड़े-बड़े चले गए तो हम उनके सामने क्या हैं, हमें भी एक दिन जाना ही है, फिर भी हम अपने छोटे छोटे स्वार्थों के लिये इसको गिराऊँ, उसको दबाऊँ, उसकी निंदा करूँ, उसका अपमान करूँ में ही लगे हुए हैं। यही आचरण हमारे लिये योग्य है क्या? जरा सोचें, मनुष्य जीवन का क्या यही उपयोग है! क्या हम इसे यों ही खो देंगे!

बहुत पुण्यों से यह मनुष्य जीवन हमें मिलती है उसको भी हम जो नहीं करने योग्य कर्म हैं उन्हीं को करने में व्यतीत कर देते हैं और जो करने योग्य कर्म हैं वह ज्यों का त्यों शेष रह जाता है।

न कश्चिदपि जानाति किं कस्य श्वो भविष्यति।
अतः श्व करणीयानि कुर्यादद्यैव बुद्धिमान्॥

अर्थात् 'यह कोई नहीं जानता कि कल किसका क्या होगा, अतः कल पर न छोड़कर करने योग्य कर्म आज ही कर लें।'

करने योग्य कर्म क्या है? मनुष्य जीवन का सार्थक्य किसमें है?

जीवन की सार्थकता इसीमें है कि हम परम आनन्द की प्राप्ति करें। आत्मसुख की प्राप्ति करें। तुच्छ क्षणिक सुखों में ही उलझकर न रह जायें। हमारी योग्यता अधिक है। हमारे अन्दर जो दिव्य चेतना छिपी है, वह अनन्त शक्तिशाली है। उसका यदि हमें बोध हो जाये, तो ये सांसारिक सुख स्वतः तुच्छ भासित होने लग जायें। वह दिव्य चेतना, वह आत्मसत्ता ही हमारा मौलिक स्वरूप है। उसको जान लेना ही परम पुरुषार्थ है।

उसको जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं

रहता। वही शाश्वत सुख का भण्डार है। और वह कहीं दूर भी नहीं है। है हमारे ही अन्दर। बस! हमको जरा जो बाहरी विषयों में सुख ढूंढने का अभ्यास बना हुआ है, उसको कन्ट्रोल करना पड़ेगा। व्यर्थ के कार्यों में इधर-उधर जो हमारा समय नष्ट होता है उसे समझपूर्वक सत्संग में, ध्यान-भजन में लगाना होगा। सबसे उत्तम तो यह है कि किन्ही आत्मज्ञानी सन्त महापुरुषका सांनिध्य मिल जाये- जिन्होंने अपने आपको जान लिया है। ऐसे सन्त महापुरुष यदि मिल जाये तो यह रास्ता अत्यंत सरल एवं छोटा बन जाता है।

विचारपूर्वक अपने हृदय में संसार की असारता को समझते हुए इस रास्ते पर बढ़ने की जिज्ञासा को जागृत करें और चल पड़े। अधिक विलम्ब करने की आवश्यक्ता नहीं। बहुत समय वैसे ही खो चुके हैं। 'शुभस्य शीघ्रम्'। शुभ में देरी क्यों? आज तक भले ही हम अनजान बने रहे, भटकते रहे, अब तो चेतें। जहाँ हैं वहीं से चल पड़े, वहीं से यात्रा शुरु कर दें।

हमारी योग्यता अधिक है और तुच्छ फल को ही प्राप्त करके हम क्यों सन्तुष्ट बने रहें। और वास्तव में सन्तोष भी क्षणिक होता है, शाश्वत तो

नहीं होता। इसलिये अपने आत्मतत्व को, अपने चेतन तत्व को जानने के अधिकार को हम समझें और अपने परम पद को प्राप्त किये बिना चैन न लें।

' तमेवैकं जानथ आत्मानं अन्या वाचो विमुञ्चथ।'

एकमात्र उसी आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो और दूसरे वृथा वाक्यों को छोड़ो!

ॐ ॐ ॐ

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यं ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतं ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरूं तं नमामि ॥

संत की पूजा तो संत बन कर ही की जा सकती है–

भावनगर
मंगलवार, २६–७–७७

स्वामीजी एक पुष्पों से सजे हुए आसन पर विराजमान हैं। इस समय 'पूज्य श्री' के विशाल

नेत्रद्वय बन्द हैं। एक भक्त विविध प्रकार से उनकी पूजा कर रहा है। उसने पूज्य श्री के तिलक लगाया है। पूज्य श्री के कुण्डलाकार श्यामवर्ण बालों पर गुलाब के ढेर सारे पुष्प शोभायमान हो रहे हैं। उनको देखकर ऐसा लग रहा है जैसे ध्यानस्थ देवों के देव महादेव की जटाजूट में से अभी अभी गंगा निकलने वाली हो।

भक्त के साथ एक पंण्डितजी कुछ संस्कृत के श्लोकों से अर्चना करते जा रहे हैं। अब भक्त ने एक सफेद चादर पूज्य श्री के गले में डाली है, फूलों के हार पहनाए हैं, कदली फल एवं अन्य प्रसाद चढाया है और पूज्य श्री की ओर बड़े भक्तिभाव से निहारने लगा है।

२–३ दिन से भक्त पूज्य श्री से प्रार्थना कर रहा था कि मेरी एक अभिलाषा आप पूरी कर दें। पूज्य श्री ने स्वाभाविक मुस्कराहट से कहा था-

"हाँ, बोलो! क्या चाहते हो?"

भक्त–"स्वामीजी! आपकी पूजा करना चाहता हूँ।"

स्वामीजी–"मेरी पूजा! मेरी पूजा तुम कैसे कर सकते हो?"

भक्त-"वह आप हम पर छोड़िये। आप तो बस आज्ञा दे दीजिये।"

मगर भक्त स्वामीजी का भाव नहीं समझा।

संतों की पूजा कौन कर सकता है! जो भी पूजा करेगा वह संत के शरीर की पूजा करेगा। संत की नहीं कर सकेगा। संत क्या इन आंखों के देखने का विषय है!

यह तो भौतिक पूजा हो जायेगी। यह तो देह की पूजा हो जायेगी, संत की नहीं। संत की पूजा तो संत बनकर ही की जा सकती है। वही वास्तविक पूजा है। मगर उस पूजा को कौन समझ पाता है! और उस पूजा को कितने कर पाते हैं! यह भौतिक पूजा तो ऐसी ही है जैसे टार्च से किसी को देख लिया जाय। मगर एक ढंग एक्स-रे द्वारा भी देखने का होता है। उसमें तो चमड़ी मांस मज्जा भी बाधित हो जाते हैं और अन्दर से हड्डियों का ढांचा भी देखने में आ जाता है। फिर भी इन स्थूल आँखों से ही कुछ न कुछ दिख जाता है।

मगर संत को देखना हो तो एक्स-रे भी काम नहीं देता। उसके लिये तो दिव्य दृष्टि चाहिये।

संत को देखना हो तो संत का हृदय बनाना पड़ता है। संत को संत बनकर ही देखा जा सकता है। ....और कोई रास्ता नहीं है।

तो भक्त स्वामीजी की ओर स्वीकृति के लिये निहार रहा है और स्वामीजी भक्त के भोले भाव को सरल मुस्कराहट के साथ निहार रहे हैं।

स्वामीजी - मगर भाई! मैं तो कभी अपनी पूजा नहीं करवाता। मेरे तो आप सभी पूज्य हैं। यदि किसी की पूजा ही करनी है तो जाओ मठों और मंदिरों में।

भक्त - नहीं स्वामीजी! हर जगह नहीं जाया जाता। जहाँ हमारा अन्तरमन गवाही देता है, वहीं जाया जाता है।

स्वामीजी - तो तुम्हारा अन्तरमन क्या कहता है?

भक्त - यही कि बहुत भटके, मगर इस बार मत चूकना। ऐसा मौका बार बार नहीं आता। हमने आपमें कुछ देखा है, तभी तो कह रहे हैं स्वामीजी! हम तो ब्राह्मण हैं। पूरी शास्त्रोक्त-विधि से आपश्री की पूजा करना चाहते हैं।

स्वामीजी - आप ब्राह्मण हैं, तब तो हमारे और

भी पूजनीय हो गए। अब बताओ, हम कैसे आपसे पूजा करवाएं!

भक्त – कुछ भी हो, सन्त तो ब्राह्मण अब्राह्मण सबसे ऊपर होते हैं। बस! आप तो हमें अनुमति दे दीजिये।

स्वामीजी भक्त के भाव भरे वचन सुनकर कुछ गंभीर होकर आकाश की ओर देखने लगे। फिर बोले – "अच्छी बात है। कोई दिन उचित समझ कर आ जाना।"

आज वही दिन है। और भक्त अपनी पवित्र तमन्ना पूरी कर रहा है। जब वह पूजा-विधि पूर्ण कर चुका तो थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने अपने विशाल नेत्र खोले। उनके मुखारविन्द पर शान्त आत्म सन्तोष देने वाली मुस्कुराहट फैल गई। अपनी गोद में पड़े हुए पुष्पों में से एक सुन्दर खिला हुआ गुलाब का पुष्प हाथ में लिया और बोले –

"देखो, ये गुलाब का फूल है। इसका रंग और रूप देखना है तो आँखें दिखाएगी। इसकी सुगन्ध नासिका से जानी जायेगी। इसकी कठोरता या कोमलता त्वचा (स्पर्शेन्द्रिय) से जानी जाएगी। यानी इसके भिन्न भिन्न गुणों को जानने के लिये हमारे

पास भिन्न भिन्न इन्द्रियाँ हैं। किसी भी वस्तु क गुण हमारी इन्द्रियाँ हमें प्रतीत कराती हैं। मगर गुण तो माया में होते हैं और हमें तो माया से पार जाना है। हमें तो गुणातीत होना है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं अर्जुन को –

'गुणातीतो भवार्जुन।'

क्योंकि सच्ची शांति तो त्रिगुणमयी माया से पार होने में ही है। मगर हम गुणों से पार कैसे होवें! गुणों से पार होने का तो हमारा कोई अनुभव ही नहीं है। गुणों से परे की अवस्था को जानने के लिये तो हमारे पास कोई इन्द्री ही नहीं है।

फिर भी गुणातीत को जानने के लिये स्थूल साधन तो हमारा शरीर, संत-महापुरुष एवं शास्त्र ही हैं। जहाँ हम हैं वहीं से तो यात्रा शुरु की जा सकती है। ऐसा तो नहीं कि हम खड़े तो कमरे में हैं और यात्रा शुरु दरवाजे के बाहर से करें। यात्रा शुरु करने के लिये जहाँ खड़े हैं वहीं से बढ़ना पड़ेगा।

भाई, हमने भी पहले ऐसा बहुत किया है।

भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति के आगे हम भी हमारी बचपन की साधना काल में घंटों रोया करते थे। उनसे आलिंगन करते थे। उनकी पूजा करते थे। मंदिरों में भजन भी गाते थे। ढोलक, तबला और मंजीरे वालों का भी खूब संग किया। मगर जब आत्मनिष्ठ महापुरुष मिल गए तो सारे संशय दूर हो गए। साधना का दिव्य फल मिल गया। तो पहले सब कुछ किया और उसके बाद आत्मनिष्ठ महापुरुष मिल गए तो जो हमने पाया वह तो हम ही जानते हैं ! बस, इतना समझ लो कि सारी जन्मों-जन्मों की थकावट उतर गई।

कुछ लोग सोचते होंगे, यह तो कपोल कल्पना की बातें हैं। नहीं, यह अनुभव की बातें हैं। आप भी स्वयं प्रयोग करके देख सकते हैं। आप जाईये किन्हीं आत्मनिष्ठ महापुरुष के पास-और जाते रहिये कुछ दिन लगातार। आप देखेंगे और अनुभव करेंगे कि उनके सांनिध्य में जाने पर आपकी काम वासनाएं और मन की चञ्चलताएं दूर होने लग गई। जैसे बर्फ के पास जाने से उसकी ठंडक का आभास हमें होता है, वैसे ही महापुरुषों के पास जाने से हमारे तमोगुण और रजोगुण दबते हैं और सतोगुण बढ़ने लगता है। और विश्वास नहीं आता हो तो एक प्रसिद्ध विदेशी पत्रकार पॉल ब्रिन्टन के

अनुभव पढो। उसको रमण महर्षि के सामने बैठने मात्र से कैसे कैसे अनुभव हुए थे, वे उसने अपनी पुस्तक में बड़ी अच्छी शैली में लिखे हैं।

तो इस आध्यात्मिक विज्ञान को हमारे प्राचीन ऋषि-महर्षि अच्छी प्रकार जानते थे, इसीलिये उन्होंने यह पूजा पद्धति समाज को दी।

अब ये तो ब्राह्मण हैं। इनकी पूजा मैं स्वीकार करूं तो पाप हो जायेगा। मगर नहीं, मैं अच्छी प्रकार जानता हूँ कि इनके पवित्र भाव को ठेस लगेगी और जिस भाव से इनकी आत्मिक उन्नति होने की एक संभावना बनी है, वह भी लुप्त हो जाएगी।

एक तो यह बात और दूसरे, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष ही हरेक की पूजा हजम कर सकते हैं; क्योंकि वे त्रिगुणातीत होते हैं। उनको अहंभाव नहीं फुरता है। उनमें अज्ञानी के अहंभाव को हरने की क्षमता होती है।

इसीलिये वे किसी भी प्रकार से साधक का आत्मोत्थान हो यह भाव दृष्टि में रखकर अपना व्यवहार बनाते हैं।

गुरु या आचार्य बनना कोई सरल कार्य नहीं है। हर कोई गुरु नहीं बन सकता। बिना योग्यता के किसी ने यदि गुरु बनने का दुस्साहस किया तो समझो वह अपने स्वयं के लिये नरक की सीढियाँ तैयार कर रहा है। उसके पुण्य नष्ट हो जाएंगे और उसका पतन हो जाएगा।

कई लोग सोचते हैं, गुरुका आसन ऊँचा क्यों होता है। अरे, ऊँचा नहीं हो तो शिष्य को लाभ कैसे हो! जैसे पानी का प्रवाह नीचे की ओर होता है। अब यदि पानी पिलानेवाला ऊपर खड़ा नहीं हो तो पानी पीने वाले के मुंह में कैसे जायेगा? पीने वाले को नीचे ही खड़े होना पड़ेगा। वैसे ही गुरु की आध्यात्मिक शक्ति (संप्रेषण शक्ति) शिष्य को तभी मिलती है जब वह नम्र हो और नम्रता से उनके सम्मुख झुका हुआ हो। नम्रता का अर्थ ही यह है कि उसका अहंकार कुछ घटा है। वह कुछ खाली हुआ है। खाली पात्र में ही कुछ भरा जा सकता है। भरे हुए पात्र में आप क्या डाल सकते हैं? उसमें जगह ही नहीं होती। इसलिये खाली होना तो पहली आवश्यकता है।

फिर, गुरु वस्तुतः वही होता है जिसकी सारी वासनाएं जल चुकी होती हैं। जो सुख-दुख, हानि लाभ,

मान-अपमान आदि से परे हो जाता है। उसका मन निर्मल हो जाता है:

कबीरा मन निर्मल भयो, जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरे, कहत कबीर कबीर ॥

कबीरदासजी क्या कहते हैं? वे कहते हैं कि तप, व्रत, उपवास, सत्सङ्ग आदि से जब मन गंगाजल की भाँति निर्मल हो गया तो अब हरि के पीछे घूमने की जरूरत नहीं रही। अब तो हरि मुझे पुकारते हुए पीछे पीछे आ रहे हैं। यानी मन को निर्मल करना यही सब तपस्याओं का मूल उद्देश्य है।

तो ऐसे निर्मल-मन महापुरुष होते हैं, वे देह भाव से ऊपर उठे हुए होते हैं। वे भी देहरूप में दिखते हैं, वे भी संसार में सारे व्यवहार निभाते हुए दिखते हैं। वे भी रोते हुए, हँसते हुए, क्रोध करते हुए, मोह करते हुए दिखते हैं, मगर वस्तुतः वे कुछ भी नहीं करते।

यह बात समझनी हम स्थूल बुद्धि वालों के लिये जरा मुश्किल है, मगर बात यही है।

न गम दुनिया का है उनको न दुनिया से किनारा है।
न शाही में वह शादा है, गदाई में न गम उनको।
जो बन आवे वही अच्छा, यही जिसका गुजारा॥

ऐसी उनकी स्थिति होती है।

उनको अपने लिये तो करना कुछ शेष ही नहीं रहा। अब जितना कुछ उनके शरीर से संसार का हित हो जाय, उतना ही नफा संसार वालों को है। उनको स्वयं को तो न जीने की रुचि है न मौत से डर। वे तो अपनी मस्ती में मस्त होते हैं।

अब यह हमारी बुद्धिमानी की बात है कि उनसे लाभ लिया जाये कि नहीं। तो हम यदि तत्त्वनिष्ठ महापुरुषों को ऊँचे आसन पर बिठाते हैं तो यह हमारे लाभ की बात है, हमारे विवेक का उपयोग है।

अरे यह ऊँच-नीच भी हमारी कल्पना में है। उनके लिये ऊँचा नीचा कुछ है ही नहीं। उन्हें तो सर्वत्र अपना आपा ही नज़र आता है।

स्वामीजी बोलते बोलते रुक जाते हैं। एक बार मुस्कुरा कर पूजा करने वाले भक्त की ओर देखते हैं, फिर सबकी ओर दृष्टिपात करके कहते हैं।

स्वामीजी—

"मैंने कई बार इस पूजा-वूजा को झंझट ही समझा है और साधारणतया सबको मना कर देता हूँ, फिर जब साधक के हित की ओर देखता हूँ और ये सारे विचार आते हैं तो फिर ढील देनी पड़ती है। अपना क्या बनता है और क्या बिगडता है, कर लेने दो पूजा! यह स्थूल पूजा ही कभी न कभी आगे चलकर तत्त्व की ओर ले जाएगी। उसमें बाधक क्यों बनूँ!

(सम्मुख रखे हुए फल व अन्य दक्षिणा को निहार कर)

यदि व्यापारी बुद्धि वाला कोई होगा तो कहेगा, "यह तो गुरु के कमाई का मौका है।"...अरे, यह कोई कमाई हैं? इस कमाई के लिये ही क्या कोई इतनी त्याग तपस्या करके गुरु बनता है! (विनोद में) हमको ऐसी कमाई की कुछ नहीं पडी है भाई! क्या होगा आखिर, अधिक से अधिक आप लोग दर्जन आधा दर्जन केले नहीं लाओगे। बस न! और क्या...!"

और स्वामीजी के मुक्त हास्य के साथ ही सभी हँस पड़े। भवन के वायुमंडल में एक विशेष सरलता,

एक आत्मीयता का भाव सभी अनुभव कर रहे हैं। यहाँ श्रोता और वक्ता के बीच कोई दूरी किसी को नजर नहीं आ रही है। स्वामीजी के मुखारविंद से गुरु और शिष्य के बीच श्रद्धा-सम्बंधों को ईस सरलता से सुनकर सभी मंत्रमुग्ध हो रहे हैं।

स्वामीजी—

"फकीरों को न तो केलों की पडी है न गज भर कपडे की न सेवा की न मान की।

यदि फकीर को भी किसी की कुछ पड़ी है तो लानत है उसकी फकीरी पर। फकीर माने गरीब नहीं। फकीर माने भिखमंगा नहीं। फकीर माने ऊपर से भले दिखे गरीब सा, मगर अन्दर से बादशाह !

हुआ जो फकीर तो रहा नाता किसी से क्या !
छोड़ा जो घर तो रहा रिश्ता किसी से क्या !
छोड़ अपने दिलबर को मिलना किसी से क्या !
तू बडी न बेल पडा अपने सिर पर खेल बाबा !
हुआ जो फकीर....॥

उनको दुनियावी किसी पदार्थ की वासना शेष नहीं होती। फकीर तब बनता है जब सभी वासनाएं जल जाती हैं। फकीर का वेश बनाकर घूमने वाले तो बहुत मिल जाएंगे, मगर सच्चा फकीर भाग्य से ही कहीं मिलेगा। उसको कोई मोह नहीं होता। उसको कोई वासना शेष नहीं होती। इसीलिये वह बादशाह होता है। उसे अपने बादशाह-पने में कोई संशय नहीं होता। संशय ने ही तो हमें दीन बना रखा है और उन्होंने संशय की जड ही काट दी है, इसलिये वे जीवभाव में नहीं आत्मभाव में विचरते हैं—

संशय सबको खात है, संशय सबका पीर।
संशय की जो फाकी करे, उसका नाम फकीर॥

ऐसे फकीरों को जिन्हें दुनिया की पड़ी ही नहीं है, हम ऊँचे आसन पर बिठा दें या नीचे आसन पर बिठा दें या मखमल की गादी पर बिठा दें या जमीन पर बिठा दें, उनकी पूजा करें या न करें-उन्हें क्या ?

मगर हाँ,

जिसने उन्हें सही अर्थों में पहचान लिया,

उनकी सेवा करने का, उनका सान्निध्य प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त कर लिया, वह समझो मालामाल हो गया। भौतिक माल से मेरा तात्पर्य नहीं है– आध्यात्मिक माल, जिसको प्राप्त करके व्यक्ति बादशाह बन जाय–उसकी ओर संकेत है।

भौतिक माल तो नश्वर है। वह मिला भी तो क्या, कभी न कभी तो जाएगा ही। और हम कहीं भी चले जायं यदि नश्वर देंगे तो नश्वर ही बदले में हासिल करेंगे। मगर ऐसे फकीर हमारा नश्वर भी लेकर शाश्वत हमें देते हैं। हमारे ही अन्दर छिपे शाश्वत्–अपने आनन्द स्वरूप आत्म तत्त्व से हमें परिचित करा देते हैं। तो —

'भावो ही विद्यते देवो'

हमारा भाव ही पत्थर को भगवान बना देता है। अतः हम अपने भावों को पवित्र बनाएं, उदात्त बनाएं। महापुरुषों में ही क्या किसी में भी दोष दर्शन करने की यदि आदत है तो उसे छोड़ें। आत्मनिष्ठ महापुरुष जहाँ भी मिलें उनका सान्निध्य लाभ लेकर अपने परम परमार्थ को सिद्ध करें।

ॐ ॐ ॐ

सांख्य समान ज्ञान नहीं, योग समान बल नहीं। संत ज्ञानेश्वरने योगबल से पाडे के मुँह से भी वेदमंत्रोच्चार करा लिया। अतः आत्मचिंतन करते हुए योगमें आरूढ हो।

१६–१०–७७
रविवार

स्वामीजी—

'योग समान बल नहीं।' गीता में भी भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं, 'हे अर्जुन तू योगी हो।'

'तस्माद्योगी भवार्जुन'

'योग वसिष्ठ' में काकभुशुण्डिजी और वसिष्ठजी के संवाद में भी योग की महिमा का वर्णन आया है। ऐसा ही एक प्रसंग त्रिपुरा रहस्य ग्रंथ में आया है। यह ग्रंथ ऋषि हरितायन ने जिज्ञासु साधकों के लिये तैयार किया था। इसमें भगवान श्री दत्तात्रेय और परशुराम का संवाद है। परशुराम श्री दत्तात्रेय से प्रश्न करते हैं.

'भगवान ! मैंने आपसे सुना कि संसार मिथ्या है, सत्य नहीं; तथापि वह मुझे सच्चा सा किस कारण से मालूम होता है? गुरुवर, मेरा संशय दूर कीजिये।'

इस प्रश्न को सुनकर भगवान दत्तात्रेय कहने लगे – परशुराम ! सुन, मैं इस भ्रम का कारण बतलाता हूँ। सत्य वस्तु को ज्यों का त्यों ग्रहण न कर उसे और कुछ समझ लेना और उसी की दृढ़ भावना कर लेना इस भ्रम का मूल हैं। देखो, जीव अपने शुद्ध स्वरूप को भूलकर शरीर से तादात्मय करके उसे ही 'मैं' मानने लगता है। कहाँ तो मांस-रक्त-हड्डी से निर्मित यह जड़ शरीर और कहाँ शुद्ध-चैतन्य-आनन्दस्वरूप आत्मा। फिर भी इस शरीर

में दृढ़ भावना कर लेने के कारण वह आनन्दस्वरूप आत्मा शरीररूप हो जाता है और सारे सुख दुख अपने में मानता है।

इसी तरह केवल दृढ़ भावना के कारण संसार सत्य मालूम होता है। जब इसके विपरीत संसार के मिथ्या होने की भावना की जाती है तब यह भ्रम निवृत्त होता है। जो जैसी भावना करता है उसे संसार वैसा ही मालूम होता है।

मैं तुझे इस विषय में एक कथा सुनाता हूँ।

ऐसा कहकर श्री दत्तात्रेय यह कथा सुनाते हैं–

प्राचीन काल में बंगाल के एक राज्य सुन्दरपुर के राजा सुषेण ने अश्वमेध यज्ञ किया था। यज्ञ का घोडा जहाँ जहाँ गया वहाँ वहाँ राजकुमार के नेतृत्व में पीछे चलने वाली सेना ने फतह का डंका बजाया। घूमते घूमते घोड़ा इरावती नदी के तट पर आया। यहाँ तपोनिधि राजर्षि तंगण योग समाधि में बैठे हुए थे। राजकुमार ने अभिमानवश उनकी परवाह नहीं की और सेना सहित आगे बढ़ने लगा। तंगण ऋषि के योगी पुत्र से यह अपमान सहन नहीं हुआ और उसने जाकर राजकुमार को उसके व्य-

वहार पर खूब फटकारा। फिर घोड़ा लेकर पास की पहाडी पर चढ गया और राजकुमार के देखते देखते घोड़े सहित एक गुफा में घुस गया।

राजकुमार भी इतनी दूर से विजयी होता हुआ आ रहा था। योगी कुमार का यह व्यवहार उसे भी सहन नहीं हुआ और उसने सेना सहित शस्त्रों की ऐसी वर्षा की कि वह पहाडी कई जगह से टूट फूट गई। मगर इतने में तो पहाडी के टूट-फूट जानेसे तंगण सुत योगीकुमार एक बड़ी सेना के साथ बाहर निकला और राजकुमार से युद्ध करने लगा।

राजकुमार की अधिकांश सेना इस युद्ध में मारी गई और वह पराजित हुआ। उसे बाँधकर योगी-कुमार गुफा में चला गया।

बचे हुए पराजित सैनिकों ने जाकर राजा सुषेण से सारा हाल कह सुनाया। राजा बड़ा बुद्धिमान था। वह विद्वानों एवं योगी महापुरुषों का सदैव आदर करता था। उसने जब यह सारा हाल सुना तो उसे बडा आश्चर्य हुआ। उसने अपने छोटे भाई महासेन को बुलाया और समझाते हुए कहा -

"भाई! योग में बड़ा सामर्थ्य होता है। लगता है राजकुमार ने तंगणमुनि के आश्रम में जाकर उनको

अपने अहंकारयुक्त व्यवहार से नाराज किया होगा। योगी महापुरूष यदि नाराज हो जायं तो वे क्या नहीं कर सकते! उनकी दृष्टि मात्र से पृथ्वी पर उथल-पुथल मच जाती है। यदि उनको खुश रखा जाय तो उनकी अमृतवर्षी दृष्टि से अखूट लाभ भी होता है। तुम योगीराज तंगण के पास जाओ और अपने व्यवहार से उन्हें प्रसन्न करके राजकुमार को छुडा लाओ।"

राजा के भाई महासेन ने आश्रम में जाकर देखा कि योगीराज तंगण समाधिस्थ हैं। उनका शरीर कठोर तपस्या के कारण सूखकर लकड़ी सा हो गया है। उनके चेहरे पर अपूर्व तेज विराजमान है।

महासेन ने योगीराज के सम्मुख आदरपूर्वक साष्टांग दण्डवत प्रणाम किया और हाथ जोडकर स्तुति करके उन्हें प्रसन्न करने का प्रयत्न करने लगा।

जो नम्र है, जो विनयशील है, जो अपने से बड़ों के आगे झुकना जानता है, वह बहुत कुछ प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है।

हम संसार में कई प्रकार के क्रूर-कपट करके दूसरों को धोखा देकर समझते हैं कि हम अधिक बुद्धिमान हैं, अधिक होशियार हैं:

तू जानता मैं ही चतुर हूँ, मूर्ख सबको मानता।
धोखे धडी मैं कर सकूं, नहीं दूसरा कर जानता ॥
पण्ड़ित बहुत हैं विश्व में, धोखा न तुझसे खाएंगे।
तेरे वचन छल दम्भ के, पहचान झट ही जाएंगे ॥

ऐसे ही एक दूसरे को धोखा देने में अपनी चतुरता मानकर कई लोग अज्ञानवश अपने सारे जीवन का व्यवहार ऐसा ही बनाकर चलते रहते हैं। मगर वे यह भूल जाते हैं कि इससे उन्हीं का हृदय अशुद्ध होता है। और अशुद्ध हृदयवाले को सुख या शांति कैसे मिल सकती है! जब ऐसा व्यक्ति परेशान होकर या कुतूहलवश या परीक्षक होकर किन्हीं संत के पास पहुँच भी जाता है तो वहाँ भी वह उनके सामने झुक नहीं पाता। वह सोचता है, मैं धनी हूँ, मैं सत्तावाला हूँ, मुझे इतने सारे लोग जानते हैं-यानी मैं कुछ हूँ। यानी यह झूठा अहं उसको सरल नहीं होने देता, उसको झुकने नहीं देता-और झुके बिना वह शान्ति का परम धन कैसे पाया जा सकता है!

जो झुकने की कला सीख गया, जो हृदय से महापुरुष के आगे झुकना सीख गया वह साधना में

बहुत आगे बढ जाता है। वह महापुरुष की कृपा का अधिकारी बन जाता है। उसे महापुरुष की कृपा से परम शांति की झलकें आना शुरु हो जाती हैं।

संतों के सामने झुकने से हमारा कुछ भी नहीं घटता है। घटता है या टूटता है तो हमारा अहंकार ही। अहंकार मिथ्या है, झूठ है, असत्य है। सत्य तो आत्म तत्त्व है।

'मैं आत्मा हूँ' ऐसा साधक को तत्त्व विचार करना चाहिये। मैं देह नहीं हूँ-मन नहीं हूँ-बुद्धि नहीं हूँ। लाभ-हानि, सुख-दुख, मान-अपमान ये सब शरीर अथवा मन से सम्बंधित हैं। 'मैं आत्मा हूँ' मुझको तो ये छू भी नहीं सकते। इसलिये मैं क्यों दुखी होऊँ।

एक संत ने ठीक कहा है—

मत हानि की परवाह कर तेरा नहीं कुछ खोय है।
मत लाभ पर ही ध्यान दे, नहीं लाभ तुझको होय है॥
तेरी प्रशंसा होय तो, तेरा न कुछ बढ़ जाय है।
निन्दा न तुझ तक पहुँचती, क्यों व्यर्थ ही दुख पाय है॥

इसलिये झूठे अहंकार को पोषित करके हम व्यर्थ क्यों अशान्त बने रहें ! हम नम्र बनें-सरल बनें। अहंकार को ऐसे महापुरुषों के सम्मुख जाकर जिनका अहंकार ब्रह्मतत्व के साथ एक हो गया है, जो ज्ञानी हैं और जिन्हें प्रशंसा या स्वयं को पुजवाने की भूख नहीं है, उनके सामने जाकर विसर्जित कर दें और आत्म धन के अधिकारी बनें। जिज्ञासु साधकों के हित के लिये श्री भोलेबाबा ने कैसा सुन्दर लिखा है-

साधु महात्मा संत के जा पास प्यारे दौड़कर।
धर भेंट उनके सामने सिर को झुका कर जोड़कर॥
जो जो कहे सुन चित्त देकर, प्रेम श्रद्धा भक्ति से।
कर हाथ से या पैर से सेवा यथावत् शक्ति से॥

तो राजा का भाई महासेन योगीराज तंगण के सम्मुख ऐसे ही अपना अहंभाव भुलाकर श्रद्धा से उनकी स्तुति करने लगा। स्तुति करते करते तीन दिन बीत गये। ध्यानस्थ पिता की स्तुति से प्रसन्न होकर योगीपुत्र बाहर आया और महासेन से बोला-

"तुम्हारी स्तुति से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। अपना मनोरथ बतलाओ, मैं पूरा करूँगा। मैं इन योगीराज का पुत्र हूँ। पिताजी १२ वर्ष के लिये

समाधी में बैठे हैं। ५ वर्ष हो चुके हैं, ७ वर्ष और बचे हैं। इन्होंने सब बातों का संकेत पहले से ही कर रखा है। तुम बतलाओ क्या चाहते हो? मैं पूरा करूंगा। तुम यह मत समझो कि मैं छोटा लडका हूँ। मैं अपने बाप की बराबरी का योगी तपस्वी हूँ। योगी पुरुषों के लिये कुछ भी असंभव नहीं है।"

इस पर महासेन उसे प्रणाम कर बोला—

"योगी पुत्र ! मेरी तो यही इच्छा है कि तुम्हारे पिता समाधि से जाग्रत हो जावें और उनसे मेरी बातचीत हो। यदि सचमुच कृपा करनी हो तो मेरी यह इच्छा पूर्ण कर दो।"

योगीपुत्र – "राजन ! तेरी इस इच्छा का पूर्ण होना बिल्कुल असंभव है !....परन्तु मैंने तुझे वचन दिया है अतः ना नहीं कह सकता। तू थोडा ठहर और योग मार्ग के मेरे अद्भुत सामर्थ्य को देख ! मेरे पिता अभी परमपावनपद में विश्रांति ले रहे हैं। इन्हें बाह्य प्रयत्नों से कोई जाग्रत नहीं कर सकता। मैं सूक्ष्म योगमार्ग से जाकर इन्हें सावधान करता हूँ, देख !" ऐसा कह कर उसने वहां आसन जमाया और इन्द्रियों का पूर्णतया निरोध किया। प्राणवायु

में अपानवायु का संयोग करके वह मुख्य प्राण के द्वारा बाहर आया और अपने पिता के शरीर में घुस गया। अनंतर अपने पिता के तल्लीन मन को सावधान कर वह तुरन्त अपने शरीर में वापिस आ गया।

इतने में वह मुनि जाग्रत हो गया। सामने राजा बड़ी नम्रता से स्तुति कर रहा है। उसे योगदृष्टि से राजा का मनोरथ मालूम हो गया। उसकी स्तुति से संतुष्ट होकर योगीराज अपने पुत्र से कहने लगे, "बच्चा, एसा फिर मत करना। क्रोध तपका घातक है। जब राजा लोगों की रक्षा करता है—सुव्यवस्था रखता है—तभी तपस्या निर्विघ्नता से सिद्ध हो सकती है। इस लिये राजा के कार्य में विघ्न डालना अयोग्य है। यह दैत्यों का स्वभाव है–योगियों का धर्म नहीं है। अतएव रागद्वेष छोड-कर घोड़े और राजपुत्र को इन्हें शीघ्र दे दो। इन्हें शीघ्र जाने दो, नहीं तो यज्ञ का समय बीत जावेगा।"

पिता के वचनों को सुनने से योगी पुत्र का क्रोध शान्त हो गया। गुफा में जाकर उसने तुरन्त घोड़े और राजपुत्र को लेकर प्रीतिपूर्वक महा-सेन के हवाले किया। महासेन ने इन दोनों को

घर की ओर रवाना कर दिया। तदनंतर वह आश्चर्यभाव से योगिराज को प्रणाम कर कहने लगा :

"भगवन्! पहाड़ के इस गर्भ में मेरा भतीजा और घोड़ा अब तक कैसे रहा? कृपा करके मुझे यह रहस्य बतलावें।"

इस तरह से पूछे जाने पर योगिराज तंगण कहने लगे "राजा, सुन। पहिले मैं राजा था। अनेक वर्षों तक मैंने एक विस्तृत राज्य चलाया है। मुझे एक समय तुर्यात्मक ईश्वर चित्स्वरूप का ज्ञान हो गया। अतः एव मुझे सब लोक व्यवहार तुच्छ मालूम होने लगा। मैंने राज्य को लड़कों के आधीन कर इस वन का आश्रय लिया। मेरी स्त्री भी साथ में आ गई। तब से तपस्या करते करते अर्बुद संवत्सर बीत गये। मेरी सेवा कर के मेरी स्त्री भी योग की उच्च भूमिका में पहुँच गई। आगे चल कर एक समय भविष्य-कालीन नियति के अचिन्त्य प्रभाव के कारण मेरी स्त्री को समाधि की अवस्था में ही अचानक कामेच्छा उत्पन्न हो गई। वह कामाकुल होकर मेरे पास आई। मुझसे संभोग होने पर उसे गर्भ रह गया। समय पर उसे यह लड़का हुआ। लड़के के उत्पन्न होते ही उसने उसे मेरी गोद में रख दिया। यह करके उस

ने प्राण त्याग कर दिया। ये सब बातें मेरी समाधि-अवस्था में हुई। जब मैंने देखा कि बालक मेरी गोद पर बैठा है और स्त्री परमपद में लीन हो गई तब मुझे लड़के पर दया आई। मैंने उसका पोषण किया। एक बार प्रसंगवश जब लड़के ने सुना कि मैंने राज्य भी चलाया है तब इसे भी राज्य चलाने की इच्छा हुई। इस ने मुझ से प्रार्थना की; अनंतर मेरे उपदेश से इसने उत्कृष्ट योगसिद्धि प्राप्त की। अब इसने केवल भावना बल से इस पहाडी में एक जगत् निर्माण कर लिया है और वहाँ सब प्रदेशों का राजकार्य करता है। उसी राज्य में इसने घोड़े और राजकुमारों को बंधन में रखा था।"

इस भाषण को सुनकर महासेन कहने लगा:- "यह बडा आश्चर्य है। भगवन, मेरी इच्छा उस स्थान को देखने की है। कृपाकर दिखला दीजिये।" इस प्रार्थना को सुनकर योगिराज ने अपने पुत्र से कहा कि वह राजा को अपना राज्यविस्तार दिखला दे। इतना कहकर मुनि तो समाधिमग्न हो गये और उनका लडका राजा को लेकर पहाडी के पास गया। वह स्वयं भीतर जाने लगा। परन्तु राजा से भीतर जाते न बन पड़ा। उसने योगीपुत्र को पुकारा। योगीपुत्र उसे भीतर से बुलाने लगा। परन्तु जब उस ने देखा कि राजा को भीतर आते नहीं बनता तब

स्वयं बाहर आकर वह कहने लगा-'राजा सच है, तू योगाभ्यासी नहीं है, अत एव तेरे लिये भीतर घुस सकना असंभव है। योगज्ञान के बिना यह पहाड़ी प्रत्येक के लिये घनरुप-(स्थूलरुप) ही है। परन्तु मुझे तो पिता की आज्ञा का पालन करना है। अतएव तुझे भीतर ले जाना पड़ेगा। तू अपने शरीर को इस घास के समूह में रख दे और केवल लिंगदेह (सूक्ष्म शरीर) धारण कर मेरे साथ भीतर चल।' इसे सुनकर राजा कहने लगा:-

'योगीपुत्र, देह से बाहर निकालने का मुझ में सामर्थ्य नहीं है। शरीर का त्याग कैसे हो सकता है? शरीर को अलग रख देना क्या मरना नहीं है!'

योगीपुत्र हँसते हुए मनमें कहने लगा-अरे इसे योग का ज्ञान नहीं है। फिर बोला-"तुम आँखें बन्द करो।" उसके आँखें बन्द करने पर योगशक्ति से वह राजा के शरीर में घुस गया। उसके सूक्ष्म शरीर को बाहर निकालकर उसके स्थूल शरीर को उसने एक गड्ढे में रख दिया। उस सूक्ष्मशरीर के साथ उसने उस गुफा में प्रवेश किया। इस समय राजा सावधान न था। योगीपुत्र ने तुरंत एक दूसरा शरीर बनाया और उसे उसमें प्रविष्ट कर जागृत किया। जागने

पर उसने देखा कि योगीपुत्र उसे लेकर आकाश में तेजी से चला जा रहा है। आसपास और ऊपर नीचे मर्यादारहित भयंकर आकाश को फैला हुआ देखकर वह डरसे कहने लगा-"योगीपुत्र मुझे यहां छोड़ मत देना। नहीं तो गिरकर मैं चकना चूर हो जाऊँगा!"

राजा को घबराया हुआ देखकर योगीपुत्र मुस्कुराहट के साथ कहने लगा-"राजा डरो मत। मैं तुझे नहीं छोड़ूंगा। धीरज रख और गुफा में मेरे निर्माण किये हुए इस सारे प्रदेश को देख।"

राजा को धीरज हुआ और वह देखने लगा। उसे दूर का आकाश विकट अन्धकार से ग्रसित दिखाई पड़ा। वहां नक्षत्र विराजमान थे। वहाँ से आगे जाते जाते उसे चन्द्रमण्डल मिला। वहां ठंड से वह अकड़ गया। परन्तु मुनिपुत्र ने उसकी रक्षा की। आगे सूर्यमण्डल मिला। उसकी उष्णता से वह जलने लगा। फिर भी योग सामर्थ्य से योगीपुत्र ने शीतलता प्रदान की। कुछ समय में वे दोनों मेरुशिखर पर उतरे। राजा वहाँ सब बातें देखने लगा। दूर की वस्तुएं देखने के लिये योगीपुत्र ने उसे सूक्ष्म और व्यापक दृष्टि दे दी थी। इसकी सहायता से लोकालोक पर्वत की फैली हुई पंक्ति को उसने देखा। उसके

आगे घोर अन्धकार था—फिर सुवर्ण भूमी थी। अनेक समुद्र, नदियाँ और पर्वतों से भरे हुए सप्तद्वीप, सब भुवन, इन्द्रादि देवता, दैत्य, मनुष्य, राक्षस, यक्ष, किन्नर आदि सब उस राजा को दिखाई पडे। वहां सत्यलोक, बैकुण्ठ, कैलास आदि स्थान भी थे। योगीपुत्र स्वयं विष्णु, महेश और ब्रह्मदेव का रूप धारण कर तीन पृथक नामरूपों से वहाँ निवास करता था। वहाँ राजा ने योगीपुत्र को सार्वभौम शासन करते हुए भी देखा।

मुनिपुत्र के इस अद्भुत योगसामर्थ्य को देखकर राजा अचंभित हो गया। फिर योगीपुत्र उससे कहने लगा-"महासेन, क्या तुझे मालूम है कि इस नूतन स्थान को देखते देखते कितने वर्ष बीत चुके हैं? यहां अभी एक ही दिन हुआ है, परन्तु बारह अर्बुद वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। चलो, अब अपने भू प्रदेश में जाएं। जहाँ मेरे पिता हैं वहाँ जाकर देखें।"

ऐसा कह कर और राजा को साथ लेकर योगिपुत्र ने वहाँ से आकाश में उड़ान मारी और दोनों पहिले की तरह बाहर आ गये।

गुफा से बाहर निकलते समय राजा को निद्रित कर और उनके सूक्ष्म शरीर को साथ लेकर योगीपुत्र

बाहर आया और उसने उसके सूक्ष्म शरीर को उसके पूर्व शरीर में प्रविष्ट करा दिया। फिर उसे सावधान कर दिया। जागृत होने पर महासेन को बाह्य भूप्रदेश, वहाँ की भूमि, झाड, मनुष्य, नदी तालाब इत्यादि सब बातें बिलकुल नई दिखाई पड़ी। वह आश्चर्य के साथ योगीपुत्र से कहने लगा—

"महात्मन ! आपने मुझे कौन सा प्रदेश दिखलाया है? पहिले देखा उससे तो यह भिन्न है। यह क्या चमत्कार है?"

योगीपुत्र कहने लगा:—"राजन् ! यह वही प्रदेश है जहाँ हम पहिले रहते थे। दीर्घकाल व्यतीत हो जाने के कारण इसका स्वरूप बदल गया है। पहाड़ी गुफा के प्रदेश में जब आप ने एक दिन बिताया तब यहाँ बारह-अर्बुद वर्ष (पहले के वर्ष का काल-पैमाना आज के पैमाने से भिन्न था) बीत गये। यहाँ की आचरणपद्धति और भाषा में परिवर्तन हो गया है। समय की गति से लोकस्थिति ऐसी ही बदलती रहती है। मैंने तो इन बातों को कई बार देखा है। देखो, मेरे सामर्थ्यवान पिता यहाँ समाधि लगाये बैठे हैं। तूने पहिले इसी स्थान में मेरे पिता की स्तुति की थी। देखो, यह वही पहाड़ी है। मैंने तुझे अपनी भिन्न सृष्टि इसी में दिखलाई है। इस समय

तक तेरे भाई के वंश में हजारों पीढ़ियाँ हो गई हैं। बंगाल में तुम्हारा जो सुन्दर नगर था वहां आजकल जानवरों से भरा हुआ जंगल है। तुम्हारे भाई के वंश में आजकल वीरबाहु राजा है। वह मालव देश में क्षिप्रा नदी के किनारे विशाल नामक नगर में राज्य कर रहा है। तेरे वंश में सुशर्मा नामक एक राजा द्राविड में राज्य कर रहा है। ताम्रपर्णी नदी के किनारे वर्धन नामक नगर उसकी राजधानी है।

इस तरह से संसार की स्थिति में सदैव परिवर्तन होता है। थोड़े ही समय में यह नूतन जगत निर्मित हो गया है। भविष्य में भी इसी तरह से कुछ समय बीत जाने पर ये पर्वत, नदियां, तालाब और भूमण्डल सब बदल जावेंगे। संसार का यही नियम है। कालगति के कारण पर्वतों के स्थान में समुद्र और समुद्रों के स्थान में पर्वत उत्पन्न हो जाते हैं। शुष्क और निर्जल प्रदेश पानी से भर जाते हैं; पत्थर के समान कठोर भूमि अतिशय उपजाऊ बन जाती है। इसलिये तू इस बात को ठीक ठीक याद रख कि हमारे पहिले के प्रदेश का ही यह स्वरूप बन गया है।

योगीपुत्र के इस भाषण को सुन कर राजा महासेन अत्यंत शोकाकुल हो गया। उसे मूर्छा आ गई

और वह जमीन पर गिर पड़ा। धीरज देने पर वह दीन मनुष्य की नांई विलाप करने लगा। अपने भाई, उसके लड़के, अपने स्त्री-पुत्र आदि का स्मरण करके वह शोक में डूब गया। उसे मोहवश शोक करते देख कर मुनिपुत्र समझाने लगाः-"राजा, तू बुद्धिमान हैं, फिर तू किसके लिये और क्या समझकर रोता है?"

इस प्रश्न को सुनकर महासेन बड़े दुःख के साथ कहने लगा—"मुने, क्या तुम्हें मेरे शोक का कारण नहीं दिखता? किसी एकाध रिश्तेदार के वियोग हो जाने पर मनुष्य को दुःख होता है। और तुम मेरा सर्वस्व नाश हो जाने पर भी कारण पूछते हो? तुम्हें क्या कहूँ?"

योगीपुत्र को हँसी आ गई। वह कहने लगाः— क्या तेरी यह समझ है कि जो कुछ चला गया है वह शोक करने से फिर भी मिल जावेगा? धीरज रखकर विचार कर कि दुःख करने से अब क्या लाभ है। यदि तू यह समझकर शोक करता कि तेरे स्वजन नष्ट हो गये हैं तो तेरे पूर्वज आदि तो कब के मर चुके है, उनके बदले तुझे सदैव शोक करते रहना चाहिये था। परन्तु यह कैसी बात है कि इस समय के पहले तू शोक नहीं करता था।

यह भी बतला कि वे किसके भाई थे? क्या तेरे थे? उन से तेरी बंधुता कैसे हुई? यदि तू कहे कि उनके और तेरे माँ बाप एक ही थे तो माता पिता की विष्ठा में जो कीड़े रहते हैं वे भी देह सम्बन्धी रहते हैं, तो फिर क्या वे तेरे भाई नहीं थे? तू उनके लिये तो शोक नहीं करता है।

राजा, पहिले तू इस बात का विचार कर कि तू स्वयं यथार्थ में कौन है और जिन्हें नष्ट समझ कर तू शोक कर रहा है वे कौन हैं। क्या तू शरीर ही है अथवा उससे कुछ भिन्न है? शरीर जड़ पदार्थों का समुदाय है। सब समुदाय के अथवा उसके किसी अङ्ग के नाश को ही नाश कहते हैं।

समुदाय के अथवा उसके किसी अङ्ग के नाश को ही नाश कहते हैं। फिर देह के अंशों का नाश तो प्रत्येक क्षण में हो ही रहा है। मल, मूत्र, कफ नख बाल आदि का लगातार नाश हो रहा हैं। अतएव तुझे हमेशा रोते ही रहना चाहिये। यदि शरीर के सर्वांश को ही नाश कहे और और इस लिये दुःख करें तो सर्वात्मना शरीर का नाश कभी नहीं होता। यह सच है कि तेरे भाईयों के शरीरों का अंश पृथ्वी आदि पदार्थों के रूप में है। यदि यह कहा जावे कि उनका भी नाश हो जाता है तो

अन्त में आकाश अविनाशी और शुद्ध रह ही जाता है। परन्तु इन बातों को छोड़ दे। मुख्य बात यह है कि तू देह नहीं है—देही है। क्यों कि तू जैसे, "यह मेरा कपड़ा है" कहता है वैसे ही "यह मेरा शरीर है" कहता है; फिर बतला कि तू देह ही कैसे हो सकता है? जब तू देह से भिन्न है तब दूसरों के देह से तेरा क्या सम्बन्ध है? जैसे तेरे भाइयों के कपड़ों से तेरा थोडा भी सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही उनकी देह से भी नहीं है। जैसे वस्त्र हैं वैसा ही शरीर है। फिर उनके शरीर के नष्ट हो जाने पर तुझे शोक क्यों होना चाहिए? मेरा शरीर, मेरा प्राण, मेरा मन इत्यादि कहने वाला तू स्वयं किस स्वरूप का है?"

योगीपुत्र की इन बातों को सुन कर महासेन कुछ देर तक विचार करने लगा। परन्तु इन प्रश्नों का उत्तर न मिलने के कारण अन्त में वह दीनता से कहने लगा भगवन, यह मुझे—बिलकुल नहीं मालूम होता कि मैं कौन हूँ। सचमुच मैं शोक कर रहा हूँ, परन्तु मुझे उसका कारण नहीं मालूम होता। मैं अज्ञानी हूँ, आपकी शरण में हूँ। अतएव बतलाइये कि इसमें गूढ़ बात क्या है? किसी भी नातेदार के मरने पर सभी आदमी शोक करते हैं। वे स्वयं

कौन हैं अथवा दूसरे कौन हैं इस बात को नहीं जानते, परन्तु केवल शोक किया करते हैं। भगवन्, मैं आपका शिष्य हूँ, मुझे इन बातों को स्पष्ट रीति से समझा दीजिये।

इसे सुनकर योगीपुत्र कहने लगाः-राजा, सुन—

"माया के कारण सब लोग मूढ़ हो गये हैं। वे अपने स्वरूप को पहिचाने बिना व्यर्थ शोक किया करते है। जब तक मनुष्य अपने स्वरूप को नहीं जानता तब तक वह दुःख पाता है, परन्तु उसे जान लेने पर वह कभी दुखी हो नहीं सकता।

लोग नींद में मोहवश होकर और अपने को भूल कर जसे दुःख करने लगते हैं अथवा कोई इन्द्रजाल विद्या से बनाये हुए साँप के भय से डरते हैं उसी तरह माया से पागल होकर मनुष्य व्यर्थ दुःख पाता है। परन्तु स्वप्न से जाग्रत हो जाने पर अथवा इन्द्रजाल विद्या का स्वरूप समझ लेने पर जैसे वह नहीं डरता और दूसरे डरने वालों को देखकर उलटे हंसता है उसी तरह आत्मस्वरूप को जानने वाले मनुष्य इस माया से छूट कर दुःख रहित हो जाते हैं और तेरे सरीखे माया से मोहित

पागलों को देख कर हंसते है। इसलिए आत्मस्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर तू इस दुस्तर माया से पार हो जा और विवेक के बल से इस मोहजनित शोक को दूर कर।"

यह सुनकर महासेन कहने लगा "भगवन्, आपका दृष्टांत यहाँ लागू नहीं होता, क्योंकि स्वप्न और इन्द्रजाल की बातें केवल मिथ्या होती हैं। परन्तु जाग्रत अवस्था में अनुभव में आने वाला यह संसार सत्य है सब बातें प्रत्यक्ष हुआ करती हैं; इसका कभी भी लोप नहीं होता। यह स्थिर है। फिर यह स्वप्न की तरह कैसे हो सकता है?"

उत्तर में वह बुद्धिमान मुनिपुत्र कहने लगा "सुन, तू कहता है कि दृष्टांत लागू नहीं होता। यह तुझे एक दूसरा मोह उत्पन्न हो गया है। जैसे किसी मनुष्य को स्वप्नरूपी एक भ्रम होकर रस्सी में साँप दिखने का और भी दूसरा भ्रम हो जाता है वैसा ही तेरा हाल है। स्वप्न के वृक्ष आदि स्वप्न के समय क्या प्रत्यक्ष कार्यों का साधन नहीं बनते? क्या वे राहचलने वालों को ताप के कष्ट से नहीं बचाते? क्या वे स्वप्न में पुरुषों को फल आदि देकर उनकी क्षुधा तृप्त नहीं करते? क्या स्वप्न सृष्टि कभी स्वप्न में झूठी मालूम होती है? क्या कभी यह

मालूम होता है कि वह स्थिर नहीं है—क्षणिक है? यदि तुम कहना चाहो कि 'जागृत होते ही वह सब झूठी हो जाती है' तो क्या यह सब जागृत प्रपंच भी निद्राकाल में नष्ट नहीं हो जाता? यदि फिर भी यह कहना चाहो कि 'वह दूसरे दिन फिर भी अनुभव में आती है इसलिए नष्ट नहीं होती' तो क्या स्वप्न के विषय भी दूसरे दिन अनुभव में नहीं आते?

यदि यह कहो कि 'वे फिर भी अनुभव में नहीं आते' तो वही पदार्थ जागृति में भी अनुभव में कब आता है? दूसरा नया ही मालूम होता है। यदि तू यह भेद बतलावे कि पदार्थों के नूतन मालूम होने पर भी पृथ्वी आदि वही वही मालूम होती है तो स्वप्न में भी उन्हीं उन्हीं पुत्रकलत्रादि का अनुभव फिर फिर होता ही है। तू सूक्ष्म विचार करके देख। यदि उस अनुभव को खोटा कहेगा तो जागृति के अनुभव को भी झूठा क्यों नहीं कहना चाहिये? जागृत अवस्था में देह, वृक्ष, नदी, दीपक आदि जो पदार्थ भासित होते हैं वे प्रति क्षण भिन्न होते हैं। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि बिलकुल वे ही ज्यों के त्यों अनुभव में आते हैं? पर्वत सरीखे पदार्थ का भी स्वरूप दूसरे क्षण में ज्यों का त्यों नहीं रहता। वह झरने, नाले आदि से बदलता रहता

है। इसी तरह से समुद्र और भूमण्डल प्रति क्षण बदल रहा है। फिर तू यह कैसे कहता है कि वे ज्यों के त्यों फिर भी अनुभव में आते हैं?

राजा, मैं अब इसका अधिक स्पष्टीकरण करता हूँ, थोड़ी सूक्ष्म बुद्धि से देख। केवल विशिष्ट स्थान में और विशिष्ट समय में पदार्थों का अनुभव स्वप्न और जागृति में समान रूप से होता है। सब देशों में सब समय किसी पदार्थ का अनुभव हो सकना अत्यन्त दुर्लभ है। ये दोनों बातें नहीं हो सकती। यदि यह कहो कि पदार्थों का अनुभव पदार्थ रूप से नहीं कारण रूप से होता है तो कारण का अर्थ है पृथ्वी आदि पंच भूत। इनका अनुभव तो स्वप्न में भी होता है। फिर अन्तर क्या है? यदि कहा कि 'स्वप्न की व्यर्थता जागृति में होती है, परन्तु जागृति की व्यर्थता कभी मालूम नहीं होती' तो अब विचार करो कि व्यर्थता किसे कहते हैं। पदार्थों का भास न होना ही उनकी व्यर्थता है। यह अनुभव की बात है कि नींद में कुछ सारे संसार का भास नहीं होता, फिर कैसे कहा जा सकता है कि जागृति की व्यर्थता नहीं होती? अब यदि यह कहो कि पदार्थों का भास न होना व्यर्थता नही है, किन्तु यह जानना कि पदार्थ मिथ्या हैं उनकी व्यर्थता है, तो तेरे

समान भ्रांत लोगों में ऐसा जानने की शुद्ध दृष्टि है कहां?

वह दृष्टि उन लोगों के पास रहती है जिन लोगों ने ज्ञेय वस्तु को पूरा पूरा पहिचान लिया है। इसलिए तेरा एक भी आक्षेप विचार के सामने नहीं ठहरता। इसीलिये मैं कहता हूँ कि यह सब दृश्य-जाल स्वप्न की सृष्टि के समान है। जागृति की तरह स्वप्न में भी दीर्घ काल का अनुभव होता है। अर्थात् स्वप्न–सृष्टि भी बाधित न होनेवाली, समस्त व्यवहार करनेवाली और स्थिर होने के कारण जागृति के बिल्कुल समान है। जागृत अवस्था में हमें मालूम होता है कि हम जाग रहे हैं। स्वप्न स्थिति में भी वैसा ही मालूम होता है। फिर स्वप्न और जागृति में अन्तर कहां है? और तू स्वप्न के रिश्तेदारों के लिये शोक क्यों नहीं करता?

यह संसार केवल भावनासामर्थ्य के कारण सच्चा मालूम होता है। शून्यता की भावना करने से सब कुछ शून्य अर्थात् खुला आकाश हो जावेगा। यदि दृढ़ निश्चय से यह भावना की जावे कि यह सब मिथ्या है तो सर्वत्र इसी आत्मभाव का अनुभव हुआ करेगा। कारण प्रत्यक्ष है, तुझे मेरा राज्य इसी गुफा में दिखलाई पड़ा था। यदि इच्छा हो

तो चल, इस पहाड़ी के चारों ओर फिर भी एक चक्कर लगावें ।"

यह कह कर योगीपुत्र महासेन के साथ चला। दोनों ने पहाड़ी की प्रदक्षिणा की। वापिस आने पर वह बुद्धिमान योगीपुत्र महासेन से फिर कहने लगा:—"राजा, पहाड़ी देखी ? केवल तीन चार मील परिधि की है। इसी के भीतर तूने अभी बड़ा विस्तृत प्रदेश देखा था फिर यह जागृति है कि स्वप्न ? बोल, यह सत्य है कि मिथ्या ? पहाड़ी में तू ने एक दिन व्यतीत किया है। तब तक यहां बारह अर्ब वर्ष बीत चुके। तो सच और झूठ का निर्णय तू ही कर। जैसे दो भिन्न भिन्न स्वप्न हों वैसे ही बात यह भी है। इसलिये ध्यान में रख कि इस संसार में भावना ही सार है। भावना को छोड़ देने पर यह संसार एक क्षण में लय हो जावेगा। इस संसार को स्वप्न समझकर शोक का त्याग कर। इस स्वप्नचित्र का आधार दर्पण सरीखा सच्चित् रूप केवल आत्मा है, इस बात को जानकर तू जैसा रहना चाहे वैसा रह। इस संसार—चित्र का दर्पण चिद्रूप आत्मा को समझकर एक बार अपने अंतःकरण को परमानंद से भर जाने दे।"

सभी श्रोता स्वामीजी की ओर निहार रहे हैं।

योग और ज्ञान मूलक यह वार्ता कई संशयों को दूर करने वाली है।

स्वामीजी—धन्य है हरितायन ऋषि जिन्होंने ऐसा संवाद ग्रन्थबद्ध किया !

यह संवाद सुनना हमारे पुण्य में बहुत अभिवृद्धि करता है। इसके बार बार श्रवण मनन से हमारा अज्ञान का आवरण कमज़ोर हो जाता है और ऐसे में किन्ही तत्वज्ञ महापुरुष की कृपा दृष्टि हो जाय तो जन्म मरण के सारे कष्टों से छूटकर मनुष्य को मुक्तिलाभ हो जाता है।

ॐ ॐ ॐ

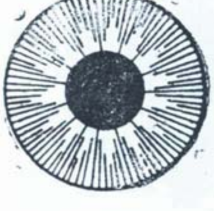

अमृत–रत्न

१	सहजवाणी भाग–१	हिन्दी	०–२०
२	,, २	,,	०–५०
३	,, ३	,,	०–७०
४	,, ४	,,	०–७०
५	,, ५	,,	१–२५
६	,, ६	,,	१–२५
७	दिव्य जीवन की ओर	,,	०–६०
८	नारी–धर्म	,,	०–५०
९	आनन्द का स्रोत	,,	०–३०
१०	संत–वाणी (पद्य)	,,	१–००
११	सुख–दुख से परे	,,	१–२५
१२	योगलीला (पूज्य श्री की जीवन झलक)	गुजराती	१–२५
१३	सत्संग–सरिता	गुजराती	०–५०
१४	व्यसनना व्याधि (संतश्री लीलाशाह का व्यसन–मुक्ति संदेश)	,,	०–२५
१५	अमी झरना	,,	०–३०
१६	संतवाणी	,,	०–२०
१७	मादक पदार्थोंथी सावधान	,,	०–२०
१८	वास्तविक जीवननो राह	,,	१–००
१९	ब्रह्म बावनी कथा (वेदांत पर)	,,	–
२०	सहजवाणी भाग–१	सिंधी	०–२५

अन्य साहित्य

२१	भजनमाला	सिंधी	०–२५
२२	सुखमणी	,,	४–००
२३	भगवद्–गीता	,,	३–००

संत तो पारसमणि होते हैं, यह एक अल्पोक्ति होगी। क्योंकि पारसमणि केवल लोहे का सोना बनाता है, किंतु संतों के स्पर्श से तो अति जघन्य प्राणी भी संतसदृश हो जाते हैं।

संत श्री आशारामजी महाराज ऐसे ही एक महापारस हैं। उनके जीवन की पावनगंगा गुजरात की धरा पर बह रही है। उनकी दिव्य ज्ञानधारा में अवगाहन कर के अनेक आत्माएं पावन हो रही हैं।

साधना के एकांगी मार्ग पर चलनेवाले तथा केवल उसी का मार्गदर्शन देनेवाले कई लोग हमारे यहां हैं, लेकिन ज्ञान, कर्म व भक्ति की त्रिवेणी में जीवन भिगो देनेवाले तथा परम योग के दर्शन करानेवाले महात्मा विरले ही होते हैं।

संत श्री आशारामजी ऐसे ही एक विरल महात्मा हैं। मानव मन की विराट व जटिल रहस्य सृष्टि में वे क्षणभर में प्रविष्ट हो सकते हैं तथा जीवन की जटिलताओं को इतनी सहजता से सुलझाते हैं कि उनसे लाभान्वित होनेवाले स्तब्ध रह जाते हैं।

साबरमती नदी के तट पर स्थित 'मोटेरा आश्रम' में ऐसे महान संत का दर्शन एवं सांनिध्य लाभ लेने हेतु कई जिज्ञासु आते हैं और परम तृप्त होकर लौटते हैं। थके-हारे जीवात्माओं के लिये पूज्य श्री एक महान बल सिद्ध हुए हैं।